आदित्यसेनगुप्त

(नाटक)

Auditya Sen Gupt

J. Book.

लेखिका

कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

एम० ए०, शास्त्री, प्रभाकर,

(प्रिंसिपल, महिला कालिज, लखनऊ)

K. Kunchalata Suberwal

लेखिका

मूक प्रश्न, भोली भूल, संकल्प, ईश्वर सम्बन्धी विचार, ज्वाला, जीवन, अमिया आदि।

प्रकाशक

हिन्दी–भवन

जालंधर, इलाहाबाद

मूल्य १॥)

भूमिका

—:o:—

गुप्तकालीन गौरव की गाथा न केवल एकमात्र इतिहास की सम्पत्ति है, वरन भावों से भरे हृदय को रिझाने के लिये भी उसमें पर्याप्त सामग्री भरी पड़ी है। चिरकाल से गुप्तकालीन भारत का गौरवगान करने की बलवती इच्छा मेरे हृदय में पल रही थी। आज वह उच्च भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति श्रद्धाञ्जलि, "आदित्यसेन गुप्त" के रूप में हिन्दीभाषा-भाषी जनता के सम्मुख उपस्थित है।

इस छोटी सी भूमिका में गुप्तसम्राटों के विषय में अधिक कहने का यत्न करके उनका यश घटाने का यत्न तो मैं नहीं करूँगी। किन्तु फिर भी हमारे नाटक के नायक आदित्यसेनगुप्त से पाठकों का परिचय करा देना उचित ही प्रतीत होता है। गुप्त-युग में भारतीय संस्कृति का पूर्ण विकास हो चुका था। न केवल भारत, वरन अन्य देशों में भी गुप्तसम्राटों की कीर्तिगाथा गाई जाती थी। साहित्य, संगीत और ललित-कलाओं में भी भारतीय प्रणाली आदर्श थी। किन्तु सृष्टि का नियम है कि उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने के पश्चात् फिर नीचे आना ही पड़ता है। स्कन्दगुप्त के पश्चात् विशाल गुप्त साम्राज्य का अन्तिम काल निकट आता सा ज्ञात होने लगा। छठी शताब्दी के लगभग मध्यभाग में वृहत् गुप्तसाम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अनेक स्वतन्त्र राजा राज्य करने लगे। फिर भी गुप्तनामधारी

प्रकाशक

इन्द्रचन्द्र नारंग

हिन्दी भवन

४९, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

मुद्रक—सुशीलचन्द्र वर्मा

सरस्वती प्रेस

जार्जटाउन, इलाहाबाद

कई राजा उत्तर भारत में वर्षों तक राज्य करते रहे। इतिहास इस विषय में प्रायः मौन ही रहा करता है कि यह गुप्तनामधारी राजा गुप्तवंश के थे भी अथवा नहीं, इनका कुछ उनसे वंश-परम्परा सम्बन्ध था, अथवा नहीं। इनका राज्य मगध के समीपवर्ती प्रदेशों पर ही था। इसी कारण ये 'मागध-गुप्त' कहाये जाते हैं।

हमारे नायक आदित्यसेनगुप्त इन्हीं 'मागधगुप्त' राजाओं में से छठे सम्राट महासेनगुप्त के पौत्र और माधवगुप्त के पुत्र थे। इस सम्बन्ध में भी कई प्रमाण दिये जाते हैं कि यह गुप्त-वंश से ही सम्बद्ध थे। अतः हम इस नाटक में इन्हें गुप्तवंश की परम्परा से ही मानते हैं।

महासेनगुप्त, 'मागध-गुप्त' राजाओं में से एक बहुत वीर और यशस्वी सम्राट माने गये हैं। इन्होंने मौखरि राजाओं को परास्त कर बिखरे मगधराज्य को पुनः सुसंगठित किया। सातवीं शताब्दी के आरम्भ से ही थानेश्वर और कन्नौज के अधिपति हर्षवर्धन का यश समस्त उत्तरापथ में फैल गया। महासेनगुप्त का पुत्र माधव-गुप्त भी हर्षवर्धन के पक्ष में हो गया। माधवगुप्त वीर, साहसी, यशस्वी और त्यागी राजा था। किन्तु किन्हीं कारणों से, वह वर्धनों की छत्र-छाया के अन्दर राज्य किया करता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् आदित्यसेनगुप्त ने अपने बाहुबल से गुप्त राज्य का विस्तार किया। मगध से लेकर अंग तक उसका राज्य था। इसी परम प्रतापी नरेश ने सर्वप्रथम मागधगुप्त राजाओं में परम-भट्टारक महाराजाधिराज की पदवी धारण की।

आदित्यसेनगुप्त के अनेक लेख उपलब्ध हैं, जिससे उनका ऐतिहासिक स्थान ज्ञात होता है। भागलपुर जिले के मन्दर स्थान से प्राप्त हुए लेख से तो स्पष्ट रूप से पता लगता है, कि आदित्यसेनगुप्त ने दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ भी किया था और उन्हें पृथ्वीपति की उपाधि भी मिली थी। इनका शासन-काल लगभग ई० सं० ६४८ से ६७६ तक रहा। इनके लेख भागलपुर, पटना, गया आदि में पर्याप्तरूप में मिले हैं।

हमारे नायक इतिहास में वीर और प्रतापी तो प्रसिद्ध हैं ही, प्रत्युत सच्चे वैष्णव भी माने गये हैं। उन्होंने भगवान विष्णु का मन्दिर बनवा कर अपनी भक्ति का परिचय दिया। उनकी सहधर्मिणी श्रीकोणदेवी तथा माता श्रीमतीदेवी भी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, जो सदैव परोपकार और प्रजाहित साधन में संलग्न रहती थीं। स्वयं वैष्णवधर्मावलम्बी होते हुए भी इनकी धार्मिक सहिष्णुता प्रशंसनीय है। इनके शासनकाल में ही इनके सेना-ध्यक्ष सालपक्ष ने सूर्य्य की प्रतिमा स्थापित करवाई थी। यह आर्य्यसंस्कृति के परम भक्त थे। इन्होंने राज्य की नींव इतनी सुदृढ़ कर दी थी कि इनके वंशज बहुत देर तक शान्तिपूर्वक राज्य करते रहे।

नाटक में कई कल्पित चरित्र भी हैं, जिनमें मुख्य देवप्रिया और गणिका मधुमयी हैं। देवप्रिया नारी का एक रूप है तो मधु-मयी दूसरा। इन दोनों को मिला करके ही नारी की पूर्ण प्रतिमा बन सकती है। युगयुगान्तर, उस नारीरूप में कोई अन्तर नहीं डाल पाते, यही इसमें विशेषता है। कौन कह सकता है, कि

आज दिन अनेकों देवप्रिया और मधुमयी भारत के शान्त किन्तु दुःखी वक्षस्थल के नीचे नहीं दबी पड़ी हैं? उनके चरित्र का विकास ही इतिहास का मुख्य उद्देश्य है।

अधिक न कह कर, अब मुझे केवल यही कहना शेष रह गया है कि जिन भावों का आवेश मैं हृदय की अन्धेरी कोठरी में, कृपण के धन की न्याईं, बन्द न रख सकी, वही अब पाठकों के समक्ष भेंटरूप से उपस्थित है। यदि कोई भी सहृदय पाठक इस प्राचीन गौरव-गाथा को भीगी हुई पलकों से पढ़ गया, तो यह यशोगान धन्य हो जायेगा।

लाहौर कंचनलता सब्बरवाल

२७-८-४२

द्वितीय संस्करण की भूमिका

"आदित्यसेनगुप्त" के नवीन संस्करण के प्रकाशन का भार जिन हाथों में सौंप रही हूँ वह हिन्दी जगत के लिये अपरिचित नहीं हैं। आशा है पाठकों को इस बार छपाई आदि की ओर से अधिक सन्तोष मिलेगा।

यह क्या है, कैसी है, इस विषय में मैं क्या कहूँ ? "आदित्य-सेनगुप्त" मुझे प्रिय है सम्भवतः इसलिये कि मेरा इससे सम्बन्ध है। अतः इस विषय में कुछ और न कह कर चुपचाप इसे पाठकों के सम्मुख रख रही हूँ। सदा की भाँति आज भी मेरा पाठकों से निवेदन है कि इसमें किसी समस्या का हल खोजने का प्रयत्न वह न करें क्योंकि वह उसमें उन्हें मिल सकेगा नहीं। मुझे तो सम्भवतः समस्या देना ही ठीक प्रकार से नहीं आता हल तो भला विद्वान लोग ही खोज पायेंगे। फिर भी आज दिन तक पाठकों और विद्वानों ने इसका जो भी कुछ आदर किया है वही मेरे सन्तोष के लिए पर्याप्त है।

लखनऊ
२९ एप्रैल १९५८

कंचनलता सब्बरवाल

पात्र-परिचय

—:o:—

पुरुष पात्र

आदित्यसेनगुप्त—गुप्तसम्राट माधवगुप्त का पुत्र, महासेनगुप्त का पौत्र, नाटक का नायक।

माधवगुप्त—गुप्तसम्राट।

कैरवगुप्त—गुप्त साम्राज्य का एक महानायक।

विष्णुगुप्त—गुप्तसाम्राज्य का एक महानायक।

रामभट्ट—एक सेनापति।

शाकल्यशर्मा—गुप्तसाम्राज्य का धर्माध्यक्ष।

ऋषभगुप्त—गुप्तसाम्राज्य का सेनानायक।

बुद्धगुप्त—महास्थविर बौद्धभिक्षु।

(बौद्धभिक्षु, महाप्रतिहार, गुप्तचर, सालयक्ष, महावृद्ध अन्य भिक्षु आदि)

स्त्री पात्र

श्रीमतीदेवी—गुप्तसाम्राज्य की महादेवी, आदित्यसेनगुप्त की माँ।

देवप्रिया—आदित्यसेनगुप्त की बहिन।

कोणदेवी—(पुरुष वेष में कोणदेव) गुप्तराज्य के एक महानायक की पुत्री, नाटक की नायिका।

मधुमयी—एक बौद्धधर्मावलम्बिनी गणिका।

(भिक्षुणियाँ, एक स्त्री तथा अन्य छोटे छोटे पात्र)

समर्पण

—:o:—

भावों की इस बाल-हृदय में सर्व-प्रथम जन्मदात्री
जननी कृपादेवी के चरण-कमलों में, जिन्होंने
बाल्य-काल से ही बिखरे भावों
को गूँथना सिखाया।

माँ, तुम्हारी
कंची

आदित्यसेनगुप्त

प्रथम अङ्क

प्रथम दृश्य

[गङ्गा की शान्त लहरें, गुप्त साम्राज्य का स्कन्धावार—सन्ध्या समय—कुमार आदित्य बहुमूल्य वस्त्र धारण किये हैं। मुक्त-श्यामल केश स्कन्ध-भाग को छू रहे हैं। मुख पर स्वर्गीय ज्योति तथा स्वस्थ शरीर है। पास ही एक झुकी कमर का अस्सी वर्षीय वृद्ध लाठी के सहारे खड़ा है। उसका उत्तरीय श्वेत है। श्वेत केश भी पृष्ठ भाग तक लहरा रहे हैं। नेत्रों में शून्यता गाढ़ी हो रही है]

बालक आदित्य—दादा, आकाश के पूर्व भाग में चमचमाती हुई लालिमा, जान पड़ता है, प्रतिदिन मेरे कानों में चुपके से कोई सन्देश दे जाती है। जानते हो दादा वह क्या है ?

रामभट्ट—(चौंक कर) ऐं, क्या कहते हो भैय्या ?

बालक आदित्य—सुनते नहीं हो ? दादा, कोई प्रतिदिन उषा तथा सन्ध्या-कालीन ललिमा के साथ साथ, मानों मुझे कुछ सन्देश दे जाता है। जानते हो, वह क्या कहता है ?

रामभट्ट—(भली प्रकार अर्थ न समझ कर) उस दिन तुम्हें आर्य्य समुद्रगुप्त की भू-विजय का मधुर गान सुना रहा था। सुनोगे भैय्या, आज भी वह ओज-पूर्ण गान ?

बालक आदित्य—(प्रसन्न होकर) हाँ, हाँ, दादा, उस दिन वाला गीत सुनाओ। जान पड़ता है, आर्य्य समुद्रगुप्त कुछ दूर दूर—सुदूर क्षितिज से उषा की लालिमा बेध कर, कह उठते हैं,

"आदित्य क्षात्र-धर्म का पालन कर।" यह कैसी बात है दादा? क्या तुम मुझे बताओगे वह क्षात्र-धर्म क्या है?

रामभट्ट—साधु! साधु! क्यों न हो आर्य्य समुद्रगुप्त का ही वीर्य्य-शौर्य्य-पूर्ण रक्त इसकी धमनियों में बह रहा है न? (ऊपर की ओर देख कर) स्वर्ग के अमर, उज्ज्वल देहधारी देवताओ! बराह भगवान! कुल-देव! सहस्र-किरण-धारी भानुदेव! तुम साक्षी रहना, स्वयं विश्व-विजयी आर्य्य समुद्रगुप्त इस बालक को कर्तव्य का आदेश दे रहे हैं। कैसा उज्ज्वल भविष्य जान पड़ता है गुप्त साम्राज्य का? (चौंक कर) हाँ, तो सुनो कुमार, (सोचकर) कौन सा गीत सुनोगे!

बालक आदित्य—परसों जो सुना रहे थे दादा।

रामभट्ट—अच्छा वही सुनोः—

(स्वर धीमा धीमा होता हुआ ऊँचा हो जाता है)

कैसा प्रचण्ड भीषण निनाद!

घन खण्ड-खण्ड नर-मुण्ड माल,
बहु चुण्ड दण्ड कर धरणी लाल
कम्पित शत्रुसम हरिण झुण्ड,
सुन गुप्तसिंह गम्भीर नाद॥

विद्युत मंडल ज्वाला महान,
निशि दिवस उठत जय जय उफान।
धनु धार विजय कर राजलक्ष्मी,
आता 'समुद्र' जन हिय अल्हाद॥

नर-नारी ठाढ़ अपलक अचेत,
वीरों का वीर आता सचेत।
गूँजे जग में धन्य धन्य शब्द,
जय! जय! जय! यह धन्यनाद॥

दक्षिण नृप-मण्डल शौर्य्यवान,
बाहू बलधारी वीर्य्यवान।

कम्पित होता सुन गुप्तनाम,
है धन्य गुप्तवंशी सुनाद ॥

[श्रीमती देवी का प्रवेश—स्वर्ण-मुकुट धारिणी सौन्दर्य्य की साक्षात् प्रतिमा। बहुमूल्य अलङ्कार और उज्ज्वल वस्त्र-सज्जिता]

श्रीमती देवी—रामभट्ट, निषिद्ध कार्य करने में ही आनन्द की सृष्टि है क्या? अबोध बालक के भविष्य में आर्य्य समुद्रगुप्त तथा वीर-शिरोमणि आर्य्य स्कन्दगुप्त का यशोगान सुना कर कण्टकों की सृष्टि न करो। न जाने वृद्धावस्था ने तुम्हारी बुद्धि ही हर ली है। इस बालक का सर्वनाश ही करके छोड़ोगे। (आदित्य से) चलो, बेटा आदित्य! चलें। मैं गंगा-सागर के तट पर बैठ कर तुम्हें सप्त-समुद्र-वासिनी राजकुमारी की कथा सुनाऊँगी।

आदित्य—नहीं, माँ! वह कथा अब रुचिकर सी प्रतीत नहीं होती। मैं तो आर्य्य समुद्रगुप्त, आर्य्य स्कन्दगुप्त तथा पितामह महासेनगुप्त की यशोगाथा सुनूँगा।

श्रीमतीदेवी—ना, यह इस समय कैसे हो सकेगा? श्री भास्कर के अस्ताचलगामी होने में अधिक विलम्ब नहीं है।

देवप्रिया—(झटिति प्रवेश करके) क्या है माँ? आदित्य को सूर्य सदृश तेजस्वी, पवित्र विश्व-विजयी गरुड़-ध्वजधारी, आर्य्य-कुल-तिलक, वीर-शिरोमणि, आर्य समुद्रगुप्त तथा दुष्ट, अनार्य, हूणों के गर्व-खर्वकारी आर्य स्कन्दगुप्त की यश-गाथा क्यों नहीं सुनने देतीं? भूल गईं माँ?···

कोमल वीणा की मधुर तान,
उठता उससे जय विजय गान।
गा उठती नभ की प्राणतन्त्री,
हो जाता मृदु भीषण निनाद ॥
कर दीन दुःख से पृथ्वी शून्य,
कर अघदारिद्र निःशेष शून्य।

वसुधा को कर स्वर्गधाम,
वह आता है उठता सुनाद॥
कैसा प्रचण्ड भीषण निनाद!

यही सुन कर तो मुझे अपने वक्षःस्थल में छिपा कर, तुम गम्भीर भयंकर रात्रि में, गीले पलकों को लिये वीरतापूर्ण इच्छाओं से ओत-प्रोत हृदय से विचारों का आदान-प्रदान किया करती थीं माँ!

श्रीमती—यह सत्य है प्रिया! किन्तु······

देवप्रिया—ना, ना, माँ! बहुत सुन चुकी······इस राज-प्रासाद में आर्य कुमारगुप्त और आर्य्य स्कन्दगुप्त की चरणधूलि से चुम्बित प्रासाद-प्रस्तरों के सम्मुख स्थाण्वीश्वर के दिए हुए अन्न को दैवीप्रसाद की तरह ग्रहण करने की क्षमता किसी में हो तो भले ही हो माँ, मुझमें तो नहीं हैं।

रामभट्ट—(धीरे से) धन्य! देवी, धन्य!···आर्य स्कन्द-गुप्त का रक्त सर्वथा निर्मूल नहीं हो गया है।

देवप्रिया—जब से आई हूँ माँ, देखती हूँ समस्त उत्तरापथ के एकमात्र अधीश्वर समस्त दक्षिणापथ के एकमात्र गर्व-खर्वहारी, मेघ-मंडित महेन्द्रगिरि-स्थित, अजयकोट्टु दुर्गाधिप स्वामिदत्त, पिष्टपुरराज महेन्द्र, केरलराज मंटराज, एरंडपल्लक दमन आदि के विशाल बाहुबल द्वारा स्थित शक्तिशाली साम्राज्यों पर भग-वान विष्णु-वाहन गरुड़ की ध्वजा को फहराने वाले, आर्य्य समुद्रगुप्त के वंशधर, गुप्तकुल की लक्ष्मी की अकाल-मृत्यु पर प्रसन्नता से खिलखिला रहे हैं।

श्रीमती देवी—प्रिया, पिता की अवज्ञा पुत्री के लिये क्या उचित है?

देवप्रिया—यह तुम कैसे कह रही हो माँ? आर्य्य चन्द्रगुप्त, और आदित्यसम शौर्य्यवान विक्रमादित्य का रक्त ही इनकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा है, यह मैं कैसे मानूँ माँ? विक्रमा-

दित्य के किसी वंशधर ने कभी क्या किसी के आश्रित होकर उनके दिये हुए अन्न से पापी जठराग्नि शान्त की थी? गुप्त-सम्राटों के प्रातः-स्मरणीय पूर्वजों के स्वबाहुबलार्जित सिंहासन को किसी सुदूर विदेशस्थित सम्राट् की कृपा का दान समझकर मस्तक नत कर स्वीकार किया था? धवलवंश की बेटी होकर भी यदि तुम, महानायक जयधवलदेव, पूजनीय महानायक कीर्तिधवलदेव की बात भूल जाओगी, तो फिर इस दासत्व से दबी हुई, नत-मस्तका गुप्त-कुल-लक्ष्मी से अनाचार और निर्लज्जता का नग्न-नृत्य देखने से पूर्व ही नीरवता-पूर्ण अन्ध-यवनिका-धारी किसी यामिनी में, किसी शून्य क्षण में, अपना गला स्वयं ही बलपूर्वक घोंट डालोगी। चलो आदित्य, रामभट्ट को भले ही यह गौरवशाली गुप्त साम्राज्य, मेरा यशस्वी वर्तमान पितृकुल, मुख खोलने की आज्ञा न दे, किन्तु परम-परमेश्वर, परम-वैष्णव परम-भट्टारक, महाराजाधिराज महासेनगुप्त की पौत्री को, आर्य्य चन्द्रगुप्त, आर्य्य समुद्रगुप्त और आर्य्य स्कन्दगुप्त का यशोगान करने से बलपूर्वक वञ्चित रख सके—ऐसी शक्ति तो प्रकृति द्वारा खेली जाने वाली इस सृष्टि में किसी प्राणी में नहीं जान पड़ती। चलो, गुप्त-कुल-शिरोमणि! बालसूर्य! चलो।

(आदित्य को लेकर चली जाती है।)

श्रीमती—हाय दुर्भाग्य! यही तो नारी की, मोहनिर्मित अबला की, दुःखभरी व्यथा है!

(पटपरिवर्तन)

दूसरा दृश्य

पथ पर

[एक युवक और एक बालिका का प्रवेश। युवक वीर-वेष-सज्जित, तथा बालिका कुछ मैले वस्त्रों में]

बालिका—भैया! अब तो प्यास के मारे चला नहीं जाता! क्या करूँ भैया?

युवक—कोण बहिन, नगर तो निकट ही होगा। ज्ञात होता है, राजधानी समीप ही है, किन्तु यह क्या? न तो मंगलवाद्य ही सुन पड़ते हैं न प्रातः स्तुतिमन्त्र ही।

बालिका—भैया, क्या तुम यहाँ पहले भी कभी आये हो?

युवक—हाँ कोण, तब तू बहुत छोटी सी बालिका ही थी। प्रातः-स्मरणीय वर्तमान सम्राट आर्य माधवगुप्त तब गुप्तसूर्य की अन्तिम किरण भी महाराज हर्षवर्धन को भेंट कर चुके थे। किन्तु मन्दिरों में तब भी स्तुति होती थी। तोरण पर कलश झलमलाते हुए मानों सूर्य से होड़ लगाते थे। मङ्गलवाद्य भी लुप्त गुप्त-राजलक्ष्मी को मानो पुकार-पुकार कर थक जाने पर श्रावण की जल-भार-पूर्ण मेघ-मंडली से होड़ लगाने लगते थे।

बालिका—किन्तु भैया, तुम यहाँ आये क्या करने थे?

युवक—यह न पूछ कोण! पिता जी उस अवसर पर सम्राट को आर्य समुद्रगुप्त की महान, किन्तु आज लुटी हुई गौरव-गाथा की स्मृति कराने आये थे। बहिन, भयंकर था वह समय! वयोवृद्ध विष्णु शर्मा, महाबलाधिकृत कैरवगुप्त, कुमारपादीय महानायक ऋषभगुप्त और पिता जी किसी प्रकार भी सम्राट से अपने प्रस्ताव को स्वीकार न करा सके। पिता जी निराश होकर लौट आये।

बालिका—(कुछ रुक कर) भैया अब तो मैं न चल सकूँगी।

युवक—अच्छा आओ, ज़रा विश्राम कर लें। सन्ध्या से पूर्व तो नगर पहुँचने की कोई विशेष आवश्यकता है नहीं।

बालिका—भैया!.........

(नेपथ्य में एक ओर कोलाहल सुन पड़ता है, कुछ विदेशी सैनिकों का प्रवेश)

एक—(बालिका को देख कर) अरे, तू कौन यहाँ आ धमकी? जानती नहीं कि स्थाण्वीश्वर के राजदूत का आज नगर-प्रवेश होगा। कुशल चाहते हो, तो तुरंत भाग जाओ।

युवक—हमें तो आज संध्या तक नगर में प्रवेश करना है।

दूसरा—आज नगर-प्रवेश न हो सकेगा।

युवक—मुझे तो अवश्य जाना ही होगा। सम्राट से आज न मिल सकने पर मेरा काम नहीं चल सकता।

तीसरा—ओह! सम्राट के कोई विशेष सहायक जान पड़ते हैं! (बालिका से) क्यों री, छोरी, तुझे भी क्या सम्राट से अत्यन्त आवश्यक कार्य है? इधर तो आ। छिप क्यों रही है?

युवक—सभ्यता से बात करो। वीर-शिरोमणि भट्टारक-पादीय महानायक कर्णदेव के वंशधर को ऐसी बातें सहन करना सर्वथा असम्भव सा ही प्रतीत होता है।

पहला—ओह! तब तो भट्टारक-पादीय (आँखें मटकाता हुआ) के सुपुत्र को गली गली कूचे कूचे एक आवारा छोकरी को लिए फिरना सर्वथा सम्भव प्रतीत होता है।

युवक—चुप, उद्दण्ड, नीच!……

पहला—(प्रहार करता है)

[चारों ओर से अनेक सैनिक मिलकर युवक पर प्रहार करते हैं। युवक वीरता, पूर्वक लड़ते लड़ते चार सैनिकों को मार गिराता है। देखते देखते बहुत से सैनिक आ जाते हैं और युवक घायल होकर गिरता है। बालिका चिल्लाती है। दो एक सैनिक उसे पकड़ लेते हैं]

एक सैनिक—चल, चल, छोकरी! इसे मरने दे।

(बालिका चिल्लाती है, सैनिक उसे कठोरतापूर्वक घसीट ले जाते हैं)

तीसरा दृश्य

[नगर की प्रसिद्ध गणिका मधुमयी के सुसज्जित प्रकोष्ठ का एक भाग—
सुन्दर उज्ज्वल हरित रङ्ग तथा सुनहरे काम सहित कालीन बिछे हैं।
उन पर उसी वर्ण के उपधान तथा सुवर्ण-खचित आवरण।
मध्य में नील-वर्ण, रजत-खचित सुन्दर साड़ी पहने मधुमयी
बैठी है। कानों के मध्य भाग से कुछ नीचे दो बड़े बड़े श्वेत
हीरक लटक रहे हैं। गले में बड़े बड़े नीलमणियों के हार
तथा माथे पर श्वेतबिन्दु सज्जित है। हस्त-कमलों में
भी मणियों के कङ्कण हैं। मधुमयी से कुछ दक्षिण
ओर हट कर बौद्ध-संघ के प्रसिद्ध कर्म- निष्ठ
महा-स्थविर बुद्धगुप्त बौद्ध भिक्षु वेश में
एक काष्ठ-पीठ पर बैठे हैं।]

(मधुमयी ताम्बूल सज्जित होठों से गा रही है।)

मदभरी यह चन्द्र की है,
प्रथम किरण आई।
गान मधुमय चन्द्रहास,
विनय भार लाई।
चिर अनन्त गानभार,
रूप यौवन लाई॥
विमल पुष्प भ्रमर-चुम्ब
प्राण प्रिया आई॥ प्रथम किरण·······

(राग-खम्माच)

(अकस्मात् तानपूरा फेंक कर) उह, कुछ रङ्ग नहीं जमता। कहिये, आचार्य और क्या सेवा कर सकती हूँ ?

बुद्धगुप्त—देवी ! यह वचन तुहारे उपयुक्त ही हैं। बुद्धगुप्त को सद्धर्म की रक्षा के लिए तुम्हारा ही तो सहारा है।

मधुमयी—सो कैसे भिक्षुवर ?

बुद्धगुप्त—यद्यपि अब महासेनगुप्त का राज्य नहीं है। माधवगुप्त इच्छा होने पर भी, किसी प्रकार हर्षवर्धन के जीते जी सद्धर्म को हानि नहीं पहुँचा सकता तथापि युवराज की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही हर्षवर्धन के विरुद्ध है। सद्धर्म को भी........

मधुमयी—(बात काटकर) पर आप क्या कहना चाहते हैं ?

बुद्धगुप्त—(आवेश में) कह तो रहा हूँ—सद्धर्म को, जब तक गुप्त साम्राज्य जीवित है, शान्ति की साँस लेने का समय मिलना कठिन है। अतः देवी मधुमयी, युवराज के सर्वनाश में ही हमारी गति है। सद्धर्म की गति है।

मधुमयी—पर मैं क्या कर सकती हूँ इस विषय में ?

बुद्धगुप्त—यही तो बता रहा हूँ। समस्त उत्तरापथ में यदि माधवगुप्त पर किसी का प्रभाव चल सकता है वो सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, सर्वगुणमयी, सूर्योज्ज्वल कुन्दन सादृश्य गौरवर्णा मधुमयी यथार्थ नामधन्या का हो। बताओ सद्धर्म की सहायता कर सकोगी ?

मधुमयी—(सहास्य) बुद्धगुप्त, तुम वृद्धावस्था के निकट पहुँच चुके हो ऐसा कह कर तुम्हारा अपमान तो न करूँगी। किन्तु ज्ञात होता है अवस्था के साथ ही साथ तुम्हारी उच्छृङ्खलता भी बढ़ रही है।

बुद्धगुप्त—सो कैसे ?

मधुमयी—(व्यङ्ग से) श्वेत केश तथा दन्तहीन युवती सुन्दरी की प्रशंसा न करने से तो सौन्दर्य प्रशंसा अधूरी रह जायेगी ना ?

बुद्धगुप्त—किन्तु, देवी। काम की बात ? उसके विषय में तो एकमात्र आपका ही सहारा है।

मधुमयी—किन्तु बुद्धगुप्त याद रहे, गणिका का भी एक गौरव होता है। समाज में भले ही उसका तुच्छ सा स्थान है और उस तुच्छ स्थान की अधिकारिणी मैं हूँ, किन्तु फिर भी मेरे विस्तृत वक्षस्थल में एक मांस-पिण्ड, हृत्पिण्ड नाम का है और वह निरन्तर

जाज्वल्यमान हो रहा है, उनके एकमात्र शुद्ध, पवित्र और चिर स्थायी प्रेम से, यह तुम किसी प्रकार भी भूल न सकोगे।

बुद्धगुप्त—इसका अभिप्राय ?

मधुमयी—इतने ही समय में विस्मृति के चिर-गम्भीर गर्त में डुबा चुके हो, बुद्धगुप्त, वह स्वर्गोपम दिवस ? जब चिर-प्रिय मेरी चिरसञ्चित मधुकरीस्वरूप आकांक्षाओं, अभिलाषाओं के एकमात्र केन्द्र मेरी दीन कुटीर पर पधारे थे, और मैंने समस्त जीवन की मधुरता भर कर हृदय सहित उसे उनके चरणों पर लुटा दिया था। बुद्धगुप्त, तुमने व्यंग स कहा था, कि मैं स्वार्थिनी हूँ, पट्ट-महादेवी के अतिपावन आसन को कलङ्कित करना ही मेरी चिर अभिलाषा है, किन्तु बुद्धगुप्त आज तो मैं पट्ट महादेवी नहीं हूँ, फिर भी पट्ट-महादेवी की माँग के सिन्दूर की युग युग तक रक्षा करने के लिये यह नीच कुलोत्पन्न वीरांगना, विलासिनी प्राण तक न्योछावर करने में पग पीछे न धरेगी।

बुद्धगुप्त—(भृकुटी चढ़ाते हुए) देवी, जरा विचार कर बात करो। क्या कहना चाहती हो ?

मधुमयी—अच्छा सुनो आर्य ! युवराज उनका पुत्र है, एकमात्र उत्तराधिकारी है। इसीलिए मेरे हृदय का खण्ड है, मेरा पुत्र है। बुद्धगुप्त ! मैं सद्धर्म को पुत्र से अधिक प्रेम न कर सकूँगी। मैं नारी हूँ आचार्य !

बुद्धगुप्त—देवी, तुम भूलती हो। सर्वस्व स्वाहा कर देने के पश्चात् अग्नि की चिनगारी राख के भीतर ढकी रहती ही है। किन्तु वह चिनगारी उस महान प्रलयंकरी गगन-स्पर्शी ज्वाला से कहीं अधिक विनाशकारी होती है देवी।

मधुमयी—आवेश में क्यों आ रहे हो ? भिक्षुराज !

बुद्धगुप्त—(सुनी अनसुनी करके) तुमने त्रिरत्न का आश्रय तो लिया। अपना मन, वचन और कर्म त्रिरत्न को समर्पित कर देने

पर भी क्या यह जरा-मरण के बन्धन को निरन्तर प्रश्रय-दायिनी तृष्णा का ह्रास न कर सकीं देवी! भगवान बुद्ध के सर्वोत्तम क्षणिकवाद का उपदेश विस्मरण कर दिया। इसीलिये उस दिन महा-स्थाविर देवघोष कहते थे कि देवी मधुमयी की दीक्षा पूर्ण नहीं हुई।

मधुमयी—आचार्य बुद्धगुप्त, मैं तो मनसा वाचा कर्मणा सद्धर्म की ही सेवा में संलग्न हूँ, किन्तु यह पाप कर्म कैसे कर सकूँगी?

बुद्धगुप्त—सुनो देवी! भगवान बुद्ध ने दिगन्त से दिगन्त तक यह अमर उपदेश दिया था—

> चंदव विमलं सुद्ध विषमसन्नमनाविलं।
> नन्दी भव परिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं
> यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोह मच्चगा।
> तिण्णो पारगतो कायी अनेजो अकथंकथी॥
> अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

मधुमयी—मेरी समझ में यह पहेलियाँ कैसे आने लगीं?

बुद्धगुप्त—देखो, देवी! मोह ही मनुष्य को वारंवार जरा मरण आदि दुःखों से लिप्त कर अनेकानेक कष्ट देता है, जिस प्रकार मोह में फँसे हुए मरण-प्राय भ्रमर को नील-पंकज बाँध कर नष्ट कर डालता है। कौन मेरा और कौन तेरा, ऐसा कहना परिव्राजक के लिए अनुचित है। इस मोह को जीर्ण-शीर्ण वस्त्र की तरह त्याग दो देवी!

मधुमयी—किन्तु, देव! आपही तो सुनाया करते हैं कि भगवान बुद्ध मनुष्यमात्र पर, नहीं, नहीं, जीवमात्र पर, अखिल ब्रह्माण्ड पर प्रेम का अमर उपदेश छिड़क गये हैं। आकाश पर खिलखिलाता हुआ चन्द्र, उससे उत्पन्न ज्योत्स्ना शरीर द्वारा स्पर्श की जाने पर जो अनुपम स्वर्गीय सुख देती है, वही सुख तो यह

कल्पना करने में होता है कि मानव सृष्टि, नहीं, नहीं, यह अखिल विश्व जीवमात्र मेरे अपने ही हैं।

बुद्धगुप्त—परन्तु संघ की रक्षा भी तो तुम्हारी दीक्षा का फल होना चाहिए ?

मधुमयी—नहीं, नहीं सच कहती हूँ, बुद्धगुप्त, संघ की दीक्षा लेने पर भी जो शान्ति न पा सकी, वही सहज शान्ति इस कल्पनामात्र से ही पा लेती हूँ कि इस जीव-संकुल माँ पृथ्वी के वक्षस्थल पर अनन्त काल से क्रीड़ा करने वाले, हिमालय से कन्या कुमारी तक ही नहीं, वरन महान् उद्देश्यवान गिरि द्वारा धारण की गई इस पृथ्वी पर जहाँ भी कहीं जीवमात्र की सृष्टि हुई है, यह सबके सब मेरे अपने ही हैं। तब फिर यह तृष्णा कैसे हुई बुद्धगुप्त ! क्या आदित्य उन्हीं में से नहीं है ?

बुद्धगुप्त—अपने आप को ठगती हो देवी ? अपने हृदय तथा बुद्धि के साथ स्वयमेव खिलवाड़ करना चाहती हो ? तुम इसलिए पीछे पग नहीं धरतीं कि आदित्य जीवमात्र में से एक है, वरन् यौवन के उद्दण्ड निर्भय काल ने भूल से एक बार जिस तेजस्वी पुरुष को तुम्हारा हृदय बरबस अर्पित करवा दिया था, उसकी वह संतान है। किन्तु देवी, सन्तान की यह अज्ञात हित-चिन्तक उस महान पुरुष की ज्ञातव्य वस्तुओं में आकर उसका प्रेम अपनी ओर आकर्षित कर भी सकेगा या नहीं इसमें सन्देह है।

मधुमयी—क्या यही मेरी इच्छा है बुद्धगुप्त !

बुद्धगुप्त—(सुनी अनसुनी करके) भला अभी से ही विस्मृति गर्त में डुबा चुकी देवी, वह घटना जब समस्त उत्तरापथ के स्वामी के वंशज, गुप्त साम्राज्य के अधीश्वर इस गुप्त सम्राट ने, तुम्हारे सवश्रेष्ठ प्रेमी ने, तुम्हारे विवाह प्रस्ताव को तुम्हें नीच-कुलोत्पन्न कह कर निर्दयतापूर्वक ठुकरा कर तुम्हारा कोमल नारी-हृदय चूर चूर कर डाला था ? तुम नीच हो अथवा वह स्वयं,

इसका निर्णय कैसे हो सकेगा देवी ? (कुछ रुक कर उत्तेजित कंठ स्वर से) सृष्टि के आदि में कोमल नारी-हृदय की सृष्टि स्वयं अपने में ही सीमित हो हो कर घुट घुट कर मरने को नहीं हुई थी। नारी के कमलोज्ज्वल, श्याम, श्वेत और रतनारे नयनों का निर्माण केवलमात्र अश्रुपात करने के लिये नहीं किया गया था। वरन् उन नयनों में प्रेम और क्रोध, अश्रुजल और प्रतिहिंसाग्नि एक साथ ही प्रचुर मात्रा में भर दी गयी थी। यही तो उनकी विलक्षणता है। नारी की प्रतिहिंसा भी उतनी ही कठोर होती है, जितना दृढ़ उसका प्रेम और जितनी बाहुल्यतापूर्ण उसकी अश्रु निधि। (काष्टपीठ से उठकर, टहलते हुए) देवी, मान जाओ, क्षणिक मोह में भविष्य धर्मलाभ नष्ट न करो। सद्धर्म की रक्षा के लिए अपने कर्तव्य का पालन करो।

मधुमयी—बुद्धगुप्त, तुम पुरुष हो। सुना जाता है, कि पुरुषों के हृदय के स्थान पर भगवान ने मांस का पिंड भी न रख कर कठोरतापूर्वक, दिगन्त से दिगन्त तक, विस्तृत दाह की सृष्टि की है। वह चिर-प्रज्वलित ज्वाला युग युग तक पुरुष कहाने वाले जीव के हृदय नामी स्थान पर कोमल भावों की स्थानापन्न बनकर जलती रहेगी। स्वयं जल जल कर मानव-सुलभ समस्त कोमलता-कमनीयता से भरी हुई सारी मधुर प्रवृत्तियों को शुष्क तृण-सम जला डालेगी। किन्तु गणिका होने पर भी मैं नारी हूँ। बुद्धगुप्त, मैं ऐसा न कर सकूँगी। क्यों न कर सकूँगी, यह तुम पुरुष होकर युग युगान्तर तक परिश्रम करने पर भी न समझ सकोगे। क्षमा करो, बौद्ध-श्रमणी होने से मधुमयी के लिये नारी होना कहीं प्रिय है, भले ही वह गौरव की वस्तु न हो।

बुद्धगुप्त—(क्रोध से खड़े होकर) हे मोह-पाश-बद्ध नारकी कीट ! तेरा इस तृष्णा मोह आदि पूर्ण भवसागर से उद्धार होना उतना ही असम्भव है जितना कि करतल पर सरसों का जमना। अच्छा तब एक बात मान, अपनी नवीन दासी को ही मेरे हवाले

कर। संघ की उचित शिक्षा में मोह-पाश छिन्न-भिन्न कर उसको उपयोगी बनाते मुझे देर न लगेगी। किन्तु स्मरण रख, तेरा उद्धार इस जन्म में सम्भव नहीं। हाँ, महाराज कुमार की मुद्रिका भी देनी होगी। (बैठ जाता है)।

मधुमयी—(ताली बजाती है। एक नववयस्का दासी का प्रवेश) कोण का इसी समय श्री आचार्य के हवाले कर दो। (हाथ की उँगली से मुद्रिका उतार कर देते हुए) किन्तु देव, इनका अनुचित उपयोग न करना। यह देवी स्वरूपिणी कन्या भी किसी उच्च कुल की रत्न जान पड़ती है। किसी प्रकार का नीच कर्म इससे न करवाना। यही मेरा अनुरोध है, इसकी रक्षा करना।

बुद्धगुप्त—देवी, मैं इसे भगवान बुद्ध की शरण में अर्पित करता हूँ। इस पापी जीव का शीघ्र ही भगवान बुद्ध सब ओर से तृष्णा मोहादि छिन्न-भिन्न कर उद्धार कर देंगे। (कोण से) चलो पुत्री ! (प्रस्थान) !

मधुमयी—(रोते-रोते भूमि पर लोट जाती है) हा ! दुर्दैव !! किस दुर्दिन में तुमने अभागी नारी की सृष्टि की थी ? और यदि तुम्हें यही रुचिकर था, तो उसके शरीर में इस छोर से उस छोर तक अविराम रूप से प्रेम क्यों भर दिया था ? नाथ ! मैं तो गणिका हूँ। मैंने तुमसे किसी भी क्षण अज्ञान में भी अन्य रमणियों की भाँति मानव-शरीरधारी प्रेम केन्द्र की प्रार्थना न की थी। प्रभु ! मैंने तुम्हारे निकट कब, किस अज्ञात क्षण में अनन्त प्रेम योग्य वस्तु चाही थी ? फिर तुमने अनजाने में ही मेरे हृदय का यह क्रय-विक्रय क्यों करा दिया ? (रोती है) मेरा चिर-दुःखित, चिर-मलिन, वज्र-कठोर पाखंड-साम्राज्य हृदय क्या किसी दिन भी एक क्षण के लिये भी इस योग्य बन सका था कि उस पर प्रेम, पावन-प्रणय का सिंहासन बना कर सहस्र-दल, नन्दन-कानन शोभा-पारिजात, स्वर्गीय-सौरभ सहित बिछाकर देव-विनिन्दित भुवन-भास्कर तुल्य आराध्यदेव की मूर्ति स्थापित की जाय ? अथवा...

क्या मेरा अभिमान भंग करने को लीलाधर ने यह लीला रची है ? किन्तु भगवान, मैंने तुम से कब अभिमान किया था ? जो तुमने मेरे उद्दंड हृदय को कुसुम-कोमल चिर-नवीन कल्पना-सज्जित रज्जु में जकड़ कर मुझे बन्दी बना कर दंड दिया ? हा नाथ !

(पटपरिवर्तन)

चौथा दृश्य

[गुप्त साम्राज्य के विशाल महल का गङ्गाद्वार। गङ्गा के तट से महल की दीवारें छू रही हैं। जलमग्न अनेक संगमरमर की श्वेत सीढ़ियाँ कुछ ऊपर तक भी आ रही हैं। इन्हीं में से एक पर युवराज आदित्य गंगा के शुभ्र जल में पैर लटकाये हुए बैठे हैं]

आदित्य—(अपने आप) रामभट्ट कहता है कि शिव ने सृष्टि के आदि-काल में तांडव किया था। नर-मुंड-माल-धारी महादेव के तांडव से समस्त संसार कम्पायमान हो उठा होगा। किन्तु इस वक्षस्थल के किसी एकान्त कोण में जो भीषण तांडव होता रहता है—निरन्तर होता रहता है—वह क्या शिव के तांडव से किसी अंश में भी कम है ? ज्ञात होता है कि यह युवती ज्योत्स्ना समग्र सृष्टि की भीषण ज्वालामुखी को, विश्व के इस छोर से लेकर उस छोर तक की भीषण, महाभीषण अनल ज्वाला को मांस में भर कर हृदय में रख गई है। माँ कहती हैं कि चन्द्र-ज्योत्स्ना शीतल है, किन्तु बहिन ! ओह, ज्ञात होता है कि उनके नारी-हृदय के स्थान पर सृष्टि नियन्ता ने भूल से ज्वाला ही ज्वाला, महाज्वाला भर दी है। ओह ! कैसी भीषण यन्त्रणा है ! कैसी जलन है ! किन्तु वह भी स्वर्गीय सुख का आभास देती है। वह कहती थी कि यह देश हमारे पूर्वजों ने अपने रक्त से सींच कर बसाया है।........(आकाश की ओर मुग्ध दृष्टि से कुछ देर देखता है। अचानक चौंक कर) कहो, कहो, क्या कहते हो ? ओह, आप, आप, आर्य......आर्य चन्द्रगुप्त, आप मुझे आदेश दे रहे हैं ? यह देश, हाँ यह मेरा है, किन्तु देव मुझमें तो आपका वंशज

कहाने की भी क्षमता नहीं। बहिन कहती है कि हम दासानुदास हैं, नीच हैं, तुच्छ हैं, स्वर्गवासी आर्य चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, तेजस्वी समुद्रगुप्त के रक्त से जीवन धारण कर साधारण कीट पतङ्ग की भाँति हर्षवर्धन के दिये अन्न से जीवन-यापन कर रहे हैं......क्या कहा ? ......मुझ में ?......मुझ में शक्ति है ? हाँ ! है। देव ! मैं तो मूर्ख था, मुझ में तो अनन्त शक्ति है। गम्भीर मेघ-मंडल पृथ्वी से दूर-सुदूर प्रदेश में, जब नीरव यामिनी का श्याम आँचल वेध कर भयंकर गर्जना कर उठता है, तब जीवमात्र काँप उठते हैं। मैं भी तो उस गंभीर—अतिगंभीर—सर्वोच्च-शृंग-अचुम्बित श्यामल मेघ में अन्तर्हित विद्युच्छटा के समान ही शक्तिमय हूँ।......तब तुम्हारा यही आदेश है ?......आर्य......आर्य्य......कहो, फिर कहो, इतने उच्च गर्जन से कहो कि विदेशी की कृपा से प्राप्त अन्नपालित इन अकिञ्चन किन्तु महान पवित्र गुप्त रक्तवान शरीर वेधकर वह आदेश कर्णद्वार द्वारा प्रवेश कर हृदय को मथ डाले।......यही मेरा एकमात्र ध्येय होगा......(जोश से खड़ा हो जाता है) (नेपथ्य से) अदृष्ट बली है युवराज !

युवक—(चौंक कर) क्या कहा ?

(बौद्ध भिक्षु का प्रवेश)

भिक्षु—गणना का फल व्यर्थ नहीं हो सकता कुमार ! इतिहास की ओर न देखो। भाग्य तुम्हारे साथ विचित्र खेल खेलेगा। तुम जिस पर अविश्वास करोगे, जिसे घृणा करना चाहोगे वही तुम्हारे प्रेम की पात्री होगी। प्रकृति-नियम-विरुद्ध चिर-कौमार्य्य-व्रत तोड़ कर तुम्हें अपनी सब से अधिक प्रेम, सबसे अधिक घृणा और सबसे अधिक अविश्वास की पात्री को चिर-संगिनी बनना पड़ेगा। भाग्य क्रूर होकर हँस रहा है कुमार ! सद्धर्म की शरण आओ, सद्धर्म से द्वेष होने के

कारण तुम्हारा सर्वनाश होने की सम्भावना होगी। किन्तु तुम्हारी चिर-संगिनी की उदारता तुम्हें बचा लेगी। किन्तु चक्रवर्ती सम्राट् होकर इस दरिद्र भिक्षु को न भूल जाना। (जाने लगता है)

युवक—(हताहत से) सुनो भिक्षु !

भिक्षु—न, न, जाता हूँ, फिर आऊँगा, किन्तु तब, जब तुम्हारा सर्वनाश विकट रूप से मुख फैलाये सर्वांश में तुम्हें निगलने को तैयार हो जायगा। मैं तुम्हारे सर्वनाश में अन्तिम आहुति देने आजाऊँगा। किन्तु…देखो ! …देखो ! …क्षितिज की ओर देखो ! …वह देखो ! अदृष्ट फिर हँस रहा है……ओह ! तुम बच जाओगे। शक्ति का सफल विजयी पवित्र आशीर्वाद तुम्हारे सिर पर मँडरा कर तुम्हें, सम्भव है, बचा ले। बस, फिर……आ जाऊँगा। (प्रस्थान)

आदित्य—(हा ! हा ! हा ! अट्टहास) अदृष्ट! अदृष्ट!! गुप्तवंश के रक्त को भय दिला सके ऐसी शक्ति तो अदृष्ट में भी नहीं। (हृदय की ओर) इस दहक रही ज्वाला में पड़कर अदृष्ट का अदृष्ट भी क्या भस्म न हो जायेगा ? ऐसा तो नियम नहीं है।

(देवप्रिया का साधारण वेश में प्रवेश)

देवप्रिया—भइया, भइया, कुमार ! अरे यहाँ कर क्या रहे हो ?

आदित्य—जानती हो देवी ! आर्य्य चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आदेश करते हैं ?

देवप्रिया—कहते क्या हो कुमार ?

आदित्य—देवी ! आपने कभी भूकम्प के पश्चात्, प्रलयाग्नि उगलने के पश्चात्, ज्वालामुखी देखा है ? बड़वाग्नि की अग्नि-स्फुलिंगों का चिर-शान्त जलधि के विशाल वक्षस्थल पर ताण्डव कर चुकने के पश्चात् सुशान्त, मर्यादापूर्ण उदधि देखा है ?

देवप्रिया—कुछ खोल कर कहो भाई !

आदित्य—बहिन, बहिन ! आपने कभी सर्वाहारी, पिशाचिनी सी भयङ्कर, नीरवता से भी अधिक नीरव, शान्त, मृत्यु से भी अधिक करुण, कठिन रौरव नरक से भी कहीं अधिक यन्त्रणा-दायिनी, सहस्र ज्वालामुखियों को अन्तर में धारण किए हुए रक्त-वर्णा चिता को जलकर बुझते देखा है ? यदि देखा हो, तो देवी ! इस हृदय से उसकी तुलना कर देखो। स्वर्ग से आर्य स्कन्दगुप्त कहते हैं, कि वत्स ! भवानी रणचण्डी अर्घ्य-विहीन सूनी पड़ी है, उसे रक्तार्घ्य अर्पण करो। गुप्त-कुल की गौरव-शिला का पुनर्निर्माण करो। किन्तु बौद्ध-भिक्षु कहता है कि सद्धर्म की रक्षा करो। देवी ! हृदय का सर्वाहारी दाह समाप्त हो चुका है। देखोगी बहिन ! यहाँ क्या हो रहा है ? (हृदय की ओर संकेत करता है)

देवप्रिया—कुमार, कहो। क्या हो रहा है तुम्हें ?

कुमार—हाहाकार !! सुन सकोगी वह करुण शब्द ? जान पाओगी यहाँ क्या अवशिष्ट है ? केवलमात्र भस्म, किन्तु उस भस्म पर चिरज्वलन्त अक्षरों में लिखा है "कर्तव्य" और "देश"।

देवप्रिया—(हृदय में लगा कर चुम्बन करती है) आशीर्वाद देती हूँ कुमार ! यह भस्म चिरस्थायी हो। उस पर अमिट चिर-नवीन स्वर्णोज्वल अक्षरों में "देश" सदैव चमचमाता रहे। कुमार, यदि पितृकुल के क्षत-गौरव के पुनरुद्धार की इतनी भी क्षीण आशा इस नारी-हृदय में न खेलती होती, तो सच मानो, यह अभागिनी महासेनगुप्त की पौत्री, विशाल दाक्षिणात्य साम्राज्य की एकमात्र अधीश्वरी, देवतातुल्य पति और पुत्र को निर्मम हो त्याग कर यूँ दीन-हीन हो, इस वंश गौरव के शव पर खण्ड खण्ड मिले हुए परान्न को ग्रहण करने के ही लिए यहाँ न पड़ी रहती।

आदित्य—किन्तु बहिन ! यह तुम्हारी मातृभूमि है। सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला माँ का आँचल क्या तुम्हें सर्वथा अरुचिकर प्रतीत होता है ?

देवप्रिया—तुम कैसे जान सकोगे भैया ? यह सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला भूमि जन-शून्य हो रही है। जहाँ शस्य-श्यामला जलराशि, कल दिन तक भी ऋषियों के पवित्र मन्त्रोच्चारण नाद से हर्षित हो फूली न समाती थी, वह आज जन-विहीन है। देश के पास, पूजनीया माँ के शान्त आँचल तले आज न अन्न है न जल। कोष, निरन्तर युद्ध करते करते तो सम्भवतः समाप्त न होता, किन्तु अल्पकाल में ही पञ्चनदवासी राजाओं की इच्छा-पूर्ति करते करते लगभग रिक्त हो चला है। देश के बहुमूल्य प्राण स्थाण्वीश्वर के संकेत पर स्वाहा हो रहे हैं। राज्य के उच्च-पदाधिकारी नाम मात्र के भट्टारक-पादीय और कुमार-पादीय रह गये हैं। स्वयं महाराज की पदवियाँ, गौरव तो क्या, हाँ उपहास की पात्र अवश्य बन गई हैं। उनकी सन्तान एक मुट्ठी अन्न के लिए तड़प जाती है। सुन रहे हो कुमार ?

आदित्य—क्या कहती हैं देवी ? क्या यह सत्य है ?

देवप्रिया—उस दिन आदित्य ! इसी प्रकार शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना मेरे मुक्त-श्याम कुन्तल-पाश से अठखेलियाँ कर रही थी। महाराज पश्चिम विजयार्थ गये हुए थे। जानते हो क्या हुआ ? एक प्रेत मूर्ति दीख पड़ी मेरे सम्मुख।

आदित्य—कौन सी कथा छेड़ दी देवी ?

देवप्रिया—सुने जाओ आदित्य ! कथा सुन्दर है सुनने में, किन्तु अनुभव करने में उतनी कठोर और दुःखजनक भी। उसका दन्तविहीन मुख मानो अखिल विश्व को उदरस्थ करना चाहता था।

आदित्य—फिर क्या हुआ ?

देवप्रिया—वह भीषण अट्टहास करके बोला—"देवी ! प्रिया ! याद है, बाल्यकाल में किसी महानायक की जो कि कुन्द-भीति कहलाता था, जिसकी गोद में रेखा के साथ बैठकर तुम खेला करती थीं ? याद है, चरणाद्रि विजययात्रा के समय तुमने

जो कहा था कि दादा वहाँ की एक रत्न-जड़ित कृपाण अवश्य लाना। युद्ध-विजय करके आने पर महाराजाधिराज महासेनगुप्त के हृदय से लगाने के पूर्व देवी! तुमने गले में लिपट कर अपनी कृपाण प्राप्त करनी चाही थी। देवी! सूर्य्य अस्त हो चुका है। चरणाद्रिगढ़ आज इन दुर्बल, किन्तु कभी अतुल बलशाली महाराजाधिराज महासेनगुप्त के हस्त-दक्षिण से स्थाण्वीश्वर के संकेत मात्र पर छीना जा चुका है। आज माधवगुप्त हर्षवर्धन के संकेत पर नृत्य कर रहे हैं। और क्या कहूँ? आज समस्त उत्तरापथ में महाराज महासेनगुप्त के एक मात्र बालसखा महानायक कुन्दभीति और उसकी एकमात्र कन्या के लिये अन्न न होने से इस वृद्धावस्था में उस बाल्यकाल की स्नेह मूर्ति की शरण में आ रहा था। किन्तु...

आदित्य—(बात काट कर) बस करें देवी, सुना नहीं जाता। आज्ञा कीजिये, किस दुष्ट को दण्ड पाने का अधिकार प्राप्त हो चुका है? आदित्य कायर नहीं है। दण्ड देने योग्य शक्ति भी उसकी क्षत्रिय भुजाओं में है।

देवप्रिया—(कुछ कठोरता से) सुनो, आदित्य! सुनो, उन्होंने कहा, "देवी, वह शरण में आ रहा था किन्तु मार्ग में एक अनुपम रत्न खो दिया। तुम्हारी बाल-सखी रेखा अन्नाभाव से तड़प तड़प कर इन्हीं वृद्ध नयनों के सम्मुख मृत्युग्रसित हो गई और यह प्रेत तुम्हें गुप्तगौरव की लुप्त गौरव-कथा सुनाने चला आया। हो सके तो प्रतीकार करना।"

आदित्य—प्रतीकार, प्रतीकार! सो कैसे?

देवप्रिया—कुमार! मैं विश्वास ही न कर सकी। मेरे दोनों नेत्र पूर्णरूप से फटे हुए महानायक की ओर निर्निमेष दृष्टि से लगे हुए थे। इसी बीच समस्त उत्तरापथ के विजयी, महानायक, भट्टारक-पादीय, वीर-शिरोमणि कुन्दभीति विदेश में गुप्त-गौरव की

लुटी हुई कीर्ति कथा सुनाते सुनाते महाराज चन्द्रगुप्त, आर्य समुद्रगुप्त से निवेदन करने स्वर्ग चले गये।

आदित्य—आप कहती क्या हैं देवी? गुप्त साम्राज्य के महानायक को अन्नाभाव से प्राण त्यागने पड़ें, यह तो असम्भव है।

देवप्रिया—कुमार! तुम कहते हो असम्भव है? वह दिन क्या कभी भी विस्मृति के शान्त जलधि में लुप्त हो सकता है? कुमार भैया! यह तुम्हारी मातृभूमि है। इसका उद्धार करो आदित्य! स्मरण रहे ऐसा न होने पर तुम्हारी यह दुःखिनी बहिन यावज्जीवन तुम्हें मुख न दिखा सकेगी कुमार!

आदित्य—बहिन! (अधीर हो जाता है। देवप्रिया हृदय से लगाती है)

देवप्रिया—वराह भगवान सब संकटों से तुम्हारी रक्षा करें!

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

महाविहार के निकट घोर वन

[अतीव सुन्दरी युवती भिक्षुणी—कषाय वस्त्र किन्तु सुचिक्कण, घने, लम्बे श्यामल केश कलाप]

युवती भिक्षुणी कोण—आचार्य कहते हैं कि जीवमात्र पर दया करना बौद्धधर्म की प्रधान शिक्षा है, किन्तु मेरे निरीह भाई पर अनेकों सैनिकों का आक्रमण करना, निरपराध, अकारण मेरे भैया की, व्यूह में घिरे हुए अभिमन्यु के समान वीर मृत्यु को निमन्त्रित करना, एक अनाथ बालिका को राज-नियम के विरुद्ध गणिका को विक्रयरूप में दे डालना और फिर एक नीच उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसका सर्वनाश कर डालना—क्या मुझे यह स्मरण नहीं कराता कि यह सब भी सद्धर्मी हैं? पिता कहते थे "बच्ची यदि कभी आश्रय रहित भी हो तो गुप्तवंश के अतिरिक्त

कहीं अन्यत्र जाकर किसी अन्य का आश्रय कदापि ग्रहण न करना। कहाँ जाऊँ अब ? इस कारागार से किस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर गुप्त-सूर्य के दर्शन करूँ ? हे वराह भगवान ! हे नाथ ! हे विष्णु भगवान ! दया करो देव !

(घोषा नाम्नी एक अन्य भिक्षुणी का प्रवेश)

भिक्षुणी—किस अज्ञात देव की उपासना हो रही है, तरुण भिक्षुणी ?

कोण—(घबरा तथा चौंक कर) क्या कहती हैं देवी ? मैं तो भगवान बुद्ध के निमित्त कुसुम-संचय कर रही थी।

भिक्षुणी—किसी चतुर नागर के कामशरविद्ध हृदय-कुसुम का संचय कर रही हो यह तो कैसे कहूँ कोण, किन्तु तुम्हारी कर्तव्य-वेला आ पहुँची है। महा-स्थविर स्मरण कर रहे हैं। शीघ्र भूगर्भ-गृह में उपस्थित हो, ऐसी महा-स्थविर की आज्ञा है।

कोण—अभी पूजनीय महा-स्थविर की सेवा में उपस्थित होती हूँ।

[प्रस्थान]

भिक्षुणी—(अपने आप ही) संसार त्याग करने के पश्चात भी यदि हृदय में कहीं कुछ अटक कर रह सकता है तो मेरा हृदय भी सर्वथा मोह-रहित नहीं हो सकता। कैसा उदार चरित्र है। यही कोण दुर्लभ स्वर्ग पारिजात के समान, अचानक ही यहाँ आन पड़ी, किन्तु विचित्र माधुर्यपूर्ण है इसका स्वभाव ! मध्याह्न-भास्कर की प्रखर किरणों के समान तेजस्विनी बालिका ! तेज और नव-पल्लव-सज्जित शत-भ्रमर-सेवित विश्व की समस्त मृदुता-धारी, कमला-चरण-सेवित पुष्पविशेष, देवपूजित श्वेत सौन्दर्यपूर्ण पंकज की सी मृदुता और मधुरता का विचित्र सम्मिश्रण है। देखते ही देखते हृदय की समस्त गुप्त शक्तियाँ मानो विद्रोही प्रजादल सदृश भाग उठती हैं।

(एक अन्य तरुणी भिक्षुणी का साधारण वेश में प्रवेश)

तरुण भिक्षुण—बहिन, यहाँ एकान्त में चुपचाप किसकी प्रशंसा करते-करते नहीं थकती हो ? कौन तुम्हारी सुप्त मानस-शक्तियों को जगा देता है ?

भिक्षुणी—आश्चर्य्य से स्वयं चकित हो जाती हूँ बहिन ! इस नव-दीक्षिता, युवती, तपस्विनी का स्वभाव त्याग, लगन और सेवा-भाव देख कर। जी चाहता है समस्त सुप्त, चिरकाल सुप्त वृत्तियों को जागृत कर विश्व की समस्त कोमल मनस निधियों को इस बालिका पर उँडेल दूँ। चिर-कौमार्य-व्रत-धारिणी मुक्त भिक्षुणी के शुष्क हृदय में यह वात्सल्य कहाँ से आन टपका ? देव !...... मैं...... क्या कुपथ-गामिनी हो जाऊँगी ?......मोह क्या मेरी चिर-कालीन, यत्नपूर्वक संचित साधना को जला कर नष्ट भ्रष्ट कर डालेगा ?

तरुणी-भिक्षुणी—देवी, देखती हूँ, प्रखर किरण-युक्त भास्कर प्रतिदिन आपके लिए नवीन सन्देश लाता है। उपासना तो आप प्रतिदिन करती हैं, किंतु ज्ञात होता है आपकी धर्म की शान्त, पवित्र, विश्व-प्रेम, सर्व-भूत-हित-कामना और समष्टि-कल्याण के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग-भावनारूपी मधुर संगीत की लय कहीं टूटने सी लगी है।

भिक्षुणी—नहीं उमा, ऐसा नहीं, मुक्त-हृदया भिक्षुणी का हृदय तो उस धातु का निर्मित होता है देवी ! जो टूट भले ही जाय, पर पिघलती नहीं। किन्तु फिर भी ज्ञात होता है, अधिक काल तक संघ-धर्म की रक्षा न कर सकूँगी।

तरुणी भिक्षुणी—यह क्या कह रही हो देवी ?

भिक्षुणी—यही कि आचार्य कहते हैं कि संघ की, सद्धर्म की रक्षा के निमित्त कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो अकरणीय हो। मैं महा-मूर्ख हूँ, तथागत की शरण पाने योग्य भी नहीं। किन्तु पाप

होगा, कैसे कहूँ ? मन आचार्य के प्रति घोर विद्रोह से भर उठता है। ऋत की पुत्री प्रकृति द्वारा अतुलनीय रमणीक सृष्टिदेवी की युग युग की चिर-संचित साधना-सौभाग्य-पूर्ण माँग का सिन्दूर लेकर, जिस देवोपम उपदेश की सृष्टि पृथ्वी पर हुई थी, क्या वह पृथ्वी पर ही रह सका ? वह महान उपदेश—मानव धर्म का उपदेश तुच्छ मानवी हृदय के दुर्बलतापूर्ण स्वार्थों को कुचल कर समग्र मानवी-सृष्टि पर एक दिन भगवान बुद्ध के मुखारविन्द से निकल कर छा गया था। उस अद्वितीय चिरजीवित सिद्धान्त के अमरत्व के लिए आधार स्तम्भ क्या झूठ प्रवञ्चना और नीचता ही होंगे। छिः ! छिः ! विश्वास नहीं होता।

तरुणी भिक्षुणी—आप क्या कह रही हैं देवी ! कुछ समझ ही नहीं आता।

भिक्षुणी—गर्व से आकाश तक उठता हुआ, बवंडर क्या कभी यह देखता है देवी ! कि अनेकानेक क्षुद्र, दीन-हीन, भयभीत मलिन पौधे, कोमल पल्लव-पत्रों सहित उस भीषण दानव से दया की भिक्षा नतमस्तक होकर माँग रहे हैं ? वह तो गर्वोन्नत-मस्तक अपने एक ही कठोर पदाघात से उनके मृदुल-मंजुल हृदय को कुचलता जाता है। संसार इसे ही तो उसकी शक्ति कहता है, उसका अतुलनीय बल कहता है। और पौधे ? उन्हें तो भोगना ही चाहिए। वह निर्बल जो हैं, दीन जो हैं, निर्धन जो हैं, अशक्त जो हैं। यह भी भला कहीं अन्याय कहलायेगा ? यही तो उसकी विश्व-विजयिनी शक्ति है। दरिद्र का सर्वाङ्गपूर्ण उपहास है। किन्तु वही बवंडर क्या हिमगिरि का कुछ भी बिगाड़ सकता है ?

तरुणी भिक्षुणी—आपके उदाहरण सुन्दर हैं देवी ! और पूर्ण भी, किन्तु युग युग से निरन्तर चली आती प्रथा मानों कह उठती है कि आपके विचारों में कहीं शृङ्खला टूटती सी जान पड़ती है। कहीं कुछ भूल का सा आभास सचमुच ही जान पड़ता है।

भिक्षुणी—हो सकता है कि जो कुछ तुम कहती हो सर्वथा सत्य ही हो, किन्तु क्या तुम बता सकती हो कि वही बवंडर अचल पृथ्वीधारी गिरिवर का कुछ क्यों नहीं बिगाड़ सकता ? कैसे करेगा ? वह शक्तिशाली जो हुआ। संघ की प्रगतिशीलता भी हम जैसे दीन, हीन, अशक्त आत्माओं पर ही बलपूर्वक विचारों का दबाव डालने और शक्ति का प्रयोग करने में ही है। बहिन! देवता की मूर्ति मानो उपासना का उत्तर व्यंग के साथ देती है। "तू यन्त्र है, बजाने वाला तार झंकरित करेगा तो तुझे बजना ही पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तेरा उपयोग ही क्या है ? तेरी गति ही कहाँ है ? फिर यह वञ्चना क्यों ? देवता से यह कटु हास्य क्यों ?" मुझे भय होता है, बहिन! तथागत इस दुर्बल-हृदय अधम नारी को क्षमा करें।

तरुणी भिक्षुणी—तुम्हारी बातें सुनकर भय होता है, बहिन! किन्तु चलो मध्याह्न सूर्य सिर पर आ पहुँचा है।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य

[गंगा द्वार—अतल स्वच्छ जल में पैर डाले कुमार आदित्य बैठे हुए आकाश की लालिमा की ओर एकटक देख रहे हैं।
वातावरण शान्त है। सन्ध्या का समय है।]

आदित्य—(स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर देखते हुए अपने आप) ओह ! बहुत पुरानी कथा है। रामभट्ट कहा करता था और कुमार आदित्य उस अमृत को, दोनों नेत्र वृद्ध दादा के मुख पर गड़ा कर, कर्णद्वय से पिया करता था। किन्तु यह क्या हुआ ? दादा कहता था कि अमावस्या की सघन कालिमा-लिप्त, पाप-रूपिणी कालयामिनी में भैरवी समस्त मानुषिक सद्कोमल भावनाओं को चूर्ण-चूर्ण कर, और उस चूर्ण को भी मुक्तहस्त हो मलयानिल में अस्तव्यस्त कर समस्त शरीर पर भीषण रूप से रक्त पोत कर ताण्डव नृत्य तो अवश्य करती है, किन्तु उस ताण्डव की अद्वितीय भयंकरता के पश्चात् उस नीरव रात्रि के हृदय में अचानक भुवनभास्कर का प्रखर किरण-शर घुस जाता है। फिर उषा के सर्वाङ्ग-पूर्ण सुन्दर मुख को देख विवशा रात्रि भाग उठती है और फिर नील-गगन-मंडल उषा की सुकोमल लालिमा से भर कर खिलखिला उठता है। नील-जल-पूर्ण सरोवर मधुर कलकल निनाद रूपी संगीत से कल्लोलती लहरों द्वारा थपकियाँ दे, कमलवृन्द को जगाने लगते हैं और सृष्टि सौन्दर्य्य पूर्ण हो माँ प्रकृति की गोद में अनुपम क्रीड़ामयी बन जाती है। कैसा मधुर हास्य है ! कैसा कटु व्यंग है इस लीलामय का !

किन्तु यहाँ तो ऐसा नहीं दीख पड़ता। युगों से सुप्त गुप्त-साम्राज्य की राजलक्ष्मी का भाग्य तो कालरात्रि की कटुता बेध कर पुनीत सविता की ज्योतिर्मयी किरणों की छाया भी न छू सका।

कैसी विडम्बना है ! वर्धनों की विजयलक्ष्मी प्रसन्न है, किन्तु हा ! हन्त ! हमारी चिर-जननी वीर-प्रसूता भी मानो वन्ध्या ज्ञात होती है। क्या ही अच्छा होता कि आज समस्त भारत-खण्ड में हिमश्वेत, चन्द्रोज्वल-मुकुटधारी, गर्वोन्नत हिमालय से लेकर कन्या-कुमारी तक बाघ, सिंह, हस्ती तथा अन्य वन्य पशु ही वास करते होते। उनके तीव्र कठोर नखों से क्षुद्र, दीन, हीन पशुओं के शरीर भले ही विदीर्ण हो सकते, किन्तु मानव की न्याई वह व्यर्थ साम्प्रयिक भेद में पड़ धर्म के नाम पर हृदय की पशु वृत्तियों, हिंसा वृत्तियों को भिन्न भिन्न प्रलोभन दे जगा जगा कर निर्बल मानवों, सजातियों के मर्मस्थल पर कठोर प्रहार तो न करते। उनकी पुनीत भावनाओं और आकांक्षाओं को निर्दयतापूर्वक छिन्न-भिन्न तो न कर सकते। सुना नहीं गया कि कभी किसी सिंह ने बली हो कर भी नख-दन्त-हीन किसी सिंह के वक्षस्थल को विदीर्ण कर उसका उत्तप्त, उष्ण, वृद्ध रक्त जी भर कर पिया हो। किन्तु ऐसा निरन्तर करते रहने पर भी हम मानव हैं और किसी दिन भी ऐसा न कर सकने पर भी वह पशु है। हम ब्रह्मा की अखिल सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ हैं और वह नहीं। यही तो देख कर नेत्र-द्वय मचल पड़ते हैं, सृष्टि-नियन्ता की भूल पर हृदय से रक्त बहाने को···(कुछ रुक कर) सचमुच ! (भुजाएँ कुछ उठा कर तथा उनको कुछ देर एकटक ध्यान से देखकर) भुजाएँ फड़क उठती हैं। एक बार फिर परशु राम की भाँति केवल क्षत्रियों का ही नहीं, ब्रह्माण्ड का संहार करने को...(कुछ देर ठहर कर) एक बार; हाँ केवल एक बार फिर भारत की पावन भूमि को व्याघ्र और सिंहों से भर देने के लिए, रक्तपात अवश्य होगा। अन्यथा भावनी कैसे तृप्त होगी ? किन्तु वह रक्त सजातियों द्वारा बहे हुए व्यक्तियों का तो न होगा ?

(महानायक शृंगी का भीलवेस में प्रवेश) (तेजी से) युवराज ! ठहरो, आशीर्वाद दे लेने दो। बहुत दिनों से ऐसी वीरत्वपूर्ण वाणी न सुनी थी। अनेकों वर्षों से सुनता आ रहा हूँ कि वृद्धावस्था

ने मेरे शरीर को जीर्ण कर डाला है। आज फिर एक बार तलवार उठा कर देखूँ तो सही युगों के विपत्ति के मारे इन हाथों में भी कुछ शक्ति है या नहीं! (तलवार निकाल कर) कितनी सुन्दरी हो प्रिया! युवावस्था में तुम्हारे सौन्दर्य्य पर मुग्ध हो युवक शृंगी ने तुमसे गंधर्व विवाह किया था। आज वृद्ध होते हुए भी तुम्हारा स्वामी अपनी चिर-सुन्दरी अनन्त युवती, परिणीता को विस्मृति के गर्भ में विलीन कर सकेगा, ऐसी सम्भावना तो इस जीवन में नहीं है। कुमार युद्ध करोगे? अच्छा तो है हमारी नव-सन्तान तलवार पकड़ना भी भूल चुकी है। त्राण तो उन से सँभल ही नहीं पाते।

आदित्य—सत्य कहते हैं, सेनापति! देश के वासियों का वीरत्व से पतन ही देश की अवनति का वास्तविक कारण है।

शृंगी—कुमार देश, जाति और धर्म के गौरव के लिए अवश्य युद्ध करो और युद्ध-भूमि में मेरा युवराज जब तीरों के गहन मेघ-दल के नीचे मनुष्य-झुण्डों पर वीरतापूर्वक नृत्य कर रहा होगा तब यह नब्बे वर्ष तक पृथ्वी पर वास किया हुआ वृद्ध शरीर उसके चरणों के अत्यन्त निकट शत्रुओं की बधुओं के माँग का सिंदूर पोंछ कर धर्म, गौ, स्त्री और ब्राह्मण की रक्षा करने का प्रयत्न कर चुकने पर एक नव-मुण्ड का तकिया लगा कर चिर-निद्रा में लीन हो जाये, यही मेरी चिर-आकांक्षा है—सर्वोपम साधना है। कुमार! आशीर्वाद दो कि ऐसा करने की शक्ति भगवती भवानी प्रचुर मात्रा में मुझ में भर दें। तुम सन्तान होकर पिता को शुभाशीर्वाद दो। आह! यह वृद्ध महानायक तुम्हें आशीर्वाद देता है, कि आर्य्य चन्द्रगुप्त का रक्त सफल कर सको।

आदित्य—महानायक आप मेरा साथ दे सकेंगे? (उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना आकाश की ओर गम्भीर दृष्टि से देखकर) आर्य्य! आर्य्य! क्या कहते हो? उत्तरापथ में अब भी इस दुर्दिन में भी ऐसा कोई भी न होगा, जो प्राचीन गौरवशाली गुप्त साम्राज्य का

साथ न दे।··· ठीक, ठीक···तो यही आदेश है देव ······आर्य्य ······आर्य्य ! महानायक ! मैं सोचता था, कि समस्त उत्तरापथ में मैं अकेला मित्र-सहचर हीन ही हूँ, किंतु तात ! क्या आप··· ···क्या आप वर्धनवंश के विरुद्ध।

शृंगी—भूलते हो कुमार ! क्षमा करता हूँ, क्योंकि तुम हमारे पूजनीय युवराज हो। आज तक भील वंश का ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ था। भील विश्वासघाती नहीं हैं। गुप्तवंश का रक्त-धारी यदि हर्षवर्धन की चरण सेवा न करता तो ब्रह्माण्ड में कोई भी गुप्तवंश का गौरव नाश करने वाले की इस भवानी से रक्षा करने में समर्थ न हो सकता। कुमार, इस शरीर में बहता हुआ रक्त आर्य्य समुद्रगुप्त द्वारा पोषित हुआ है। यदि यह आर्य्य स्कन्दगुप्त के वंश के लिए काम आ सका, तब ही हम धन्य हो सकेंगे। पांच सहस्र पदातिक और दस सहस्र भील अश्वसैनिकों के साथ यह दास गुप्तसाम्राज्य के कुमार का अनुचर है, अभी इसी समय, इसी क्षण से···(सामरिक रीति से तलवार शिरस्त्राण से छू कर अभिवादन करता है।)

आदित्य—(चरणों पर गिर कर) क्षमा करो, तात ! आदित्य तुम्हारा बालक तो अवश्य है किन्तु मूर्ख है। इस गम्भीर सुश्याम रंग में अन्तर्निहित विशाल, उज्ज्वल हृदय को इन अन्धे, शारीरिक, लौकिक नेत्रों से न पहचान सका। इस अपने प्रज्ञाचक्षु अज्ञान बालक को क्षमा करो तात !

शृंगी—(हृदय से लगा कर) धन्य हो कुमार ! यह विनय तुम्हारे योग्य ही है।

(पटाक्षेप)

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

[वंगदेश का एक अत्यन्त अप्रसिद्ध छोटा सा ग्राम। शोन नदी मदमाते यौवन से इठलाती पूर्ण तरंगों सहित बह रही है। कोण पूर्णरूप से एक वीर सैनिक के वेश में सज्जित है।]

कोणदेवी—(मीठे स्वर से गाती है)

मैं प्रणय का गान होती !

और सारे विश्व में भर प्रेम का वरदान देती !
मैं प्रणय का गान होती !
नील-नभ में चन्द्रिकाएँ, मस्त यौवन गान गातीं !
चन्द्र-किरणों से अचानक खेलती और उलझ जातीं !
मौन रजनी के हृदय में मैं नवल उल्लास बोती ॥
मैं प्रणय का गान होती !

(गाते गाते सहसा कुछ चुप होकर नदी में पैर डाल कर फूलों से खेलने लगती है।)

जीवन नवीन है, नवीन, चिर-नवीन, किन्तु शून्य नहीं। आनन्द का एक चिर-प्रवाहित निरन्तर कल-कल ध्वनिवान स्रोत सुदूर से बहता हुआ, आकर अन्तस्तल तक घुसा जाता है। युग-युगान्तर-संचित दुष्कर्मों के फल मानो एक-बारगी ही धोकर आत्मा को पवित्र कर डालता है। इच्छा होती है सर्वस्व, चेतना तक दान कर मुक्त-हस्ता निरभिमानिनी होकर कुमार के चरणों में ही पड़ी रहूँ। आते समय आचार्य बुद्धगुप्त ने शपथपूर्वक कहलाया

था कि मैं कुमार का पूर्ण विश्वासपात्र बन शरीर-रक्षक पुरुष के वेश में छाया के समान उनका अनुसरण करूँ और ··· और फिर ··· समय जानकर युद्ध-क्षेत्र में अथवा घर में ही यह विषाक्त कृपाण (कृपाण निकाल कर ध्यान से देखती है) उनके वीरोचित हृदय में उतार दूँ। मैंने शपथ लेकर कहा तो अवश्य था, किन्तु हृदय की, पिता जी द्वारा अनेकों वार प्रशंसित प्राचीन गुप्तवंश के वंशधर के चरणारविन्द पूजने की उत्कट उत्कण्ठा न रोक सकने के कारण ही वैसा करना स्वीकार करना पड़ा। उहुँक ! जाने भी दो। आज कुमार अभी तक नहीं आये। (गुनगुनाने लगती है)

विश्व भर उल्लास में मधुमास में जब हास देता ,
चूम कलियों को भ्रमर जब नवल जीवन भास देता ,
नयन-सिन्धु अश्रु-बिन्दु चेतना देकर पिरोती !
मैं प्रणय का गान होती ॥

(राग-देस)

ओह ! आज इच्छा होती है कि उनके श्रीचरणों पर ही स्वयमेव समर्पित होकर इसका प्रायश्चित करूँ। कैसा तेज है ! कैसी वीरत्व की साक्षात मूर्ति है ! सोन के तट पर देखा था। एक सहस्र वीरों के साथ कुमार जिस चातुरी से असंख्य शत्रुदल का सामना कर रहे थे, वह क्या कभी विस्मरण किया जा सकता है ? युद्ध भूल कर मैं हतभागिनी तो उस रक्तवर्ण सूर्य्यमंडल को लज्जित करने वाले मुख को ही एकटक निहारती रही। फिर दक्षिण बाहु में तीर खाकर कुमार जब मेरे सम्मुख ही गिरने लगे, तो मेरी भी चेतना लौट आई। कैसा कोमल था वह स्पर्श ! बाल्यकाल में किये हुए व्रत-नियम मानो सशरीर आकर आशीर्वाद देने लगे—"शिव की चिर-सहचरी हो !" वेदना से छटपटाता मेरा शिव मेरे ही तो अंक में पड़ा था। इच्छा होती थी कि उसी प्रकार चिरकाल तक उस कोमल स्पर्श सुख का अनुभव करती रहूँ। कुमार ने नेत्र खोलते हुए कहा था, "कोणदेव, ऐसी

निःस्वार्थ सेवा माता को छोड़कर और पृथ्वीतल पर कौन कर सकेगा ?" क्या जान सकोगे कुमार! कोण के शरीर का यदि अन्तिम रक्त-बिन्दु भी गुप्तवंशज के चरण तले पड़ कर इस कठोर, हृदय-हीन, तप्त बालुका-कण को शीतल बना सके, तो महानायक कर्णदेव की पुत्री का जीवन शतवार धन्य हो जाये। स्वर्गीय पिता जी की आत्मा शत-मुख से आशीर्वाद की वर्षा कर डाले। किन्तु ऐसा अवसर ही कहाँ आया ? मुझे आराध्यदेव के सम्मुख एक साधारण सैनिक छोड़ और कुछ बनने की इच्छा ही कब हुई ? उहुँक! मेरे लिये तो यही सौभाग्य पर्याप्त है।

(कुछ देर चुपचाप फूलों की पत्तियों से खेलती है। फिर लहरों को हिलाते हुए गुनगुनाने लगती है।)

मधुर स्वप्नों में जगत-उल्लास से सौरभ विभव सा,
मस्त होकर गान गाता दीप्ति की उज्ज्वल किरण सा!
आँख में आँसू भरे उर में व्यथा यदि ढूँढ पाती!
मैं प्रणय का गान गाती!
मैं प्रणय का गान होती!

बाल्यकाल की मधुर मृदु-स्मृति अब भी कभी कभी हृदय को उल्लसित कर उठती है। माँ के साथ विष्णुमन्दिर में लक्ष्मीनारायण को देख कर अनजान ही मेरे नेत्रों में भक्तिभाव से अश्रु उमड़ उठते थे। माँ हँस कर कहती थीं,—"कोण! न घबरा। शीघ्र ही तेरा भी स्वामी तुझे लक्ष्मी के समान ही अंक में भर लेगा।" नारी-जीवन की चिर-कालीन साधना का स्वरूप कहीं अनजाने भी, अचानक ही जीर्ण शीर्ण न हो उठे! गौरी! विश्वनाथ !! यही तो मेरी चिरकाल की तपस्या का प्रसाद होगा। माँ, मुझे आराध्यदेव के, जन्मजन्मान्तर के स्वामी के चरणों में युग युग तक अनवरत भाव से पड़ी रहने दो। माँ, तुम्हें हृदय-रक्त से स्नान कराऊँगी। तुम्हारे चरणों से बह कर वही रक्त मेरी चिर-सौभाग्य भरी माँग का सिन्दूर होगा।

(भक्तिपूर्वक प्रणाम करती है। फिर फूलों से खेलने लगती है। कुछ अनमनी सी हो जाती है। आदित्य का साधारण जंगली भील-वेश में प्रवेश)

आदित्य—भाई कोणदेव, देखो तो भला इस वेश में मैं कितना सुन्दर दीखता हूँ? सुन्दर प्रतीत होता हूँ न? हाँ ज्ञात होता है कि भगवान ने समस्त कोमल भावनाओं की सृष्टि तुम्हारे ही लिये की है। कभी-कभी तो सृष्टि-नियन्ता की विचित्रता पर आश्चर्य्य होता है, उसने तुम्हारे हृदय में अद्भुत पुरुषोचित साहस, सैनिकोचित शौर्य्य-वीर्य्य और स्त्रियोचित कोमलता का विचित्र सम्मिश्रण किया है। भला अर्धरात्रि में निद्रा को तिलाञ्जलि दे कौन इस नदी तट पर बैठना चाहेगा? मित्र! तुम सैनिक हो अथवा कवि?

कोण—कुछ विचार न करें युवराज! आप इस वेश में अतीव सुन्दर दीखते हैं। अतीत के गर्भ में कुछेक तप्त चिनगारियाँ दबी पड़ी हैं। समय समय पर उन्हें कुरेद कर, विस्मृति के गर्त से बाहर लाकर हृदय को उस विचित्र पीड़ा से दबा देने में आनन्द आता है, युवराज!

आदित्य सो कैसे?

कोण—आपने कभी पीड़ित अंग को अधिक दबा कर क्या आनन्द का अनुभव किया है?

आदित्य—हाँ, हाँ, क्यों नहीं।

कोण—यदि हाँ, तो मेरे इस पीड़ा-लिप्त आनन्द को समझ सकेंगे?

आदित्य—कोण! प्रिय कोण! एक बार फिर अपनी कथा तो सुनाओ, मित्र!

कोण—अनेकों बार तो सुन चुके हैं कुमार!

आदित्य—नहीं, नहीं, एक बार और क्या न सुना सकोगे मित्र?

कोण—(अपने आप धीरे से) कथा तो क्या, मेरे तो अन्तिम शब्द भी तुम्हारे ही लिये हों। (प्रगट) सुनिये, कुमार पाटलीपुत्र से सुदूर पश्चिमोत्तर में हमारा सुरक्षित, सुव्यवस्थित सा गढ़ था। माँ की मृत्यु के पश्चात् पिता उनके आशीर्वाद स्वरूप मुझे और मेरे भाई को लेकर रहते थे।

आदित्य—हाँ, इतना तो मुझे याद है। आगे कहो।

कोण—क्षमा करें कुमार, पिता जी कहते थे, कि गौरवशाली गुप्त-साम्राज्य को जब वीर सैनिकों की आवश्यकता नहीं और इस महासेनगुप्त के सेनापतित्व में युद्ध करके ही श्वेत-केशधारी वृद्ध के हृदय में सिर मुड़ा कर बौद्ध बनने का साहस नहीं, तो गुप्त साम्राज्य अपने प्राचीन देववंश को आज भी स्मरण कर सकेगा इसकी कोई आशा नहीं। गुप्तरूप से पिताजी अपने अन्तिम साथी तक को विदेशी सम्राट द्वारा अधिकृत राज्य की रक्षा के लिये भेंट कर चुके। हम बालक थे और पिता वृद्ध। कर्मचारियों के अभाव से कर आना बन्द हो गया। हम सब मृत जीवों के मांस पर निर्वाह करने लगे। कुमार, सच मानिये, मुझसे तो वह खाया नहीं जाता था।

आदित्य—कोण, कहते क्या हो? तब यह गुप्त-साम्राज्य क्या ऐसा अकर्मण्य है कि वह आश्रित की रक्षा भी नहीं कर पाता? तुम ऐसे राज्य को छोड़ कर भाग क्यों नहीं गये?

कोण—कुमार, यदि आप एक क्षण के लिये भी समझ सकते कि वह साम्राज्य तब भी इसी प्रकार शान्तिपूर्वक चल रहा था तो···

आदित्य—अच्छा तो आगे कहो।

कोण—हाँ, तो, मृग का मांस जिह्वा पर रखते ही मृगी के अतुलनीय कठोर अभिशाप नेत्रों के सम्मुख घूमने लगते थे। एक प्रातः पिता ने अपने जीवन की सर्वप्रिय वस्तु, माँ की अद्वितीय वीणा बेच कर हमारे लिए अन्न का प्रबन्ध किया। किन्तु दूसरे प्रातः सूर्य्योदय से पूर्व पिता का मृत शरीर द्वार पर लोट रहा था। अनुमान किया गया कि दुःख के असह्य उद्रेक मे उनका हृदय फट गया। पिता कहते थे कि यदि वह काल-कवलित हो जायें तो हम गुप्त-साम्राज्य को छोड़ और किसी की शरण न लें। कुमार, बड़े भय्या और मैं इधर ही आ रहे थे। मार्ग में कुछ पंचनदवासी सैनिक मेरे निरपराध भाई पर टूट पड़े। भय्या मारे गये और मैं अनेकों दुर्गतियों के पश्चात् अब पिताजी का चिर-संचित स्वप्न गुप्तयुवराज की चरणसेवा करके पूरा कर रहा हूँ।

आदित्य—हा, दुर्दन्त! हा दुर्भाग्य! मेरे हृदय के सर्वोत्तम रत्न सर्वप्रिय कोणदेव के वंशजों की यह दुर्गति! ऐसा होना क्या उचित है कोण!

कोण—युवराज आप चिन्ता न करें; मैं तो बहुत ही सुखी हूँ। आपके मुख पर चिन्ता की रेखा मेरे हृदय में शूल से भी अधिक पीड़ा पहुँचाती है।

आदित्य—(हँस कर) तुम इतने कोमल हृदय क्यों हो? कोण! ज्ञात होता है, कवित्व-शक्ति भगवान ने तुम्हें प्रचुर मात्रा में दी है। कलियों पर भ्रमरों का चुम्बन क्या तुम्हें इतना भाता है कि इस श्वेतनील-पंकज-पूर्ण जल को छोड़ कर कहीं और बैठना तुम्हारे लिये असम्भव सा ही होता है? ऐसा क्यों? यह रमणी-सी मृदुता कहाँ से पाई?

कोण—युवराज, आपने क्या कभी किसी को प्रेम किया है?

आदित्य—प्रेम क्या होता है, यह क्या तुम नहीं जानते कोण?

सुन्दर चंद्र की ओर रात्रि के गहन अन्धकार में अपलक देखते रहने से अतुलित सुख की प्राप्ति होती है। फूलों पर भ्रमरों के मधुर चुम्बन की कहानी देख कर नयनों को अपार सुख की प्राप्ति होती है। किरणों के, अरुण सूर्य की सुनहरी किरणों के जाल का मस्तक पर स्पर्श अनिर्वचनीय आनन्द का दायक होता है। यह सब क्या प्रेम नहीं है कोण ? किन्तु ऐसा प्रश्न तुमने किया ही क्यों ? क्या तुम किसी अज्ञात क्षण में कभी अज्ञानता से किसी रमणी के कच-कलापों में अपना हृदय तो नहीं खो आये हो ?

कोण—खोया तो अवश्य है कुमार, लेकिन किसके; सो कैसे जान सकूँगा ?.........(घबड़ा कर) नहीं, नहीं, युवराज ! चलिये, विश्राम करें। रात्रि दो पहर बीत चुकी है।

आदित्य—ओह, विश्राम ! क्यों यहाँ बैठे-बैठे तो नदी-तट और चन्द्रकिरणों को देख कर अत्यन्त आनन्द आता है। फिर भला कोणदेव, यहाँ से यह अचानक विरक्ति क्यों !

कोण—युवराज, रात्रि लगभग समाप्त हो चुकी है।

आदित्य—अच्छा चलो।

(पट-परिवर्तन)

द्वितीय दृश्य

[नगर-श्रेष्ठ-सुन्दरी वारांगना मधुमयी का सुसज्जित प्रकोष्ठ। चारों ओर सुगन्धित वस्तु पात्रों में जल रही है। द्वार तथा अन्य वायु मार्गों पर बहुमूल्य पर्दे लटक रहे हैं। मध्य में एक अत्यन्त मूल्यवान वस्त्र पर देवी मधुमयी बैठी हैं। उनके ठीक सम्मुख कुछ दूर पर एक मेज़ पर अत्यन्त मूल्यवान वस्त्र पर स्वर्ण-खचित भगवान बुद्ध की निर्वाणप्राप्ति के समय की प्रतिमा है। देवी मधुमयी के दाहिनी ओर

स्वयं सम्राट माधवगुप्त विराजमान हैं।
मधुमयी के निकट ही वामहस्त की
ओर सुन्दर सुरुचि दर्शक वीणा
रक्खी हुई है।]

मधुमयी—कुछ नहीं महाराज! यूँ ही आपको देखने की इच्छा मचल कर बलवती हो उठी थी।

सम्राट—क्यों न, अवश्य उठी होगी।

मधुमयी—(महाराज के मुख पर आश्चर्य का चिह्न देख कर) क्यों? क्या विश्वास नहीं होता महाराज! दुर्गम पर्वतों की कठिन दुर्जेय घाटियों के तल में पड़े हुए असंख्य रजकणों को कुचलती हुई, वेगवती धारा क्या मार्ग के दूसरे भाग में पहुँचती पहुँचती गँदली नहीं हो जाती, सम्राट!

सम्राट हाँ! हाँ! होती क्यों नहीं।

मधुमयी—किन्तु फिर भी क्या उस प्रशान्त गम्भीर उत्कट धारा को कोई तुच्छ समझ कर पतित कहने का साहस कर सकता है?

सम्राट—तात्पर्य?

मधुमयी—निर्लज्ज नर्तकी आप सरीखे सम्राट को निःस्वार्थ-भाव से भज सकती है, क्या यह ऐसे भारी आश्चर्य की बात है? किसी समय तो पवित्र गुप्तवंश के एक मात्र युवराज आर्य्य समुद्र-गुप्त के एकमात्र वंशधर इसी नीच नर्तकी के बालसूर्य-सम अरुण अलक्तरंजित चरण-कमलों पर न्योछावर हो रहे थे। तब भी क्या आप अविश्वास करते थे सम्राट?

सम्राट—नहीं, नहीं, देवी! अविश्वास नहीं यूँ ही स्वभाव-वश साधारणतया पूछ बैठा! यदि तुम सरीखी उच्च-शिक्षिता विदुषी देवी से ऐसी आशा होती तो क्या तुम्हारा यह कुसुम-

कुसुमायुध इसी तरह बिना किसी शस्त्र के अरक्षित सा तुम्हारी दासी द्वारा प्राप्त स्मृति-चिह्न, रक्तमणि-मंडिता मुद्रिका के नाग-पाश में बँध कर तुम्हारे उन्हीं अलक्त-रंजित अरुण-वर्ण चरण-कमलों में आन पड़ता ?

मधुमयी—महाराज, मधुमयी यौवन की समस्त मधुरता लुटा कर भी आज कुसुम-कुसुमायुध की इस कृपा से कृत-कृत्य हुई।

सम्राट—कहो, क्या आज्ञा होती है देवी ? शीघ्र ही मुझे मन्त्रि-मण्डल के सम्मुख अन्तरंग परिषद् में उपस्थित होना होगा।

मधुमयी—ओह, सौन्दर्य-परित्यक्ता मुरझाई हुई कली क्या अलि को इतना विरक्त कर देती है, महाराज ! आज भी मधुमयी में, सुनती हूँ, पुरुषों को आकर्षित कर सकने भर की कला तथा शक्ति का सर्वथा अभाव नहीं हुआ है। अस्तु, सुना है, महाराज कुमार को सिप्रा के तट पर फिर भास्करवर्म्मा के पुत्र के साथ युद्ध करने को भेज रहे हैं। यही जानना चाहती हूँ देव !

सम्राट—इतना शीघ्र ही देवी ! असमय में ही प्रफुल्लित यौवन को बिदा कर अकारण राज-नीति की शरण क्यों ले बैठीं ?

मधुमयी—नहीं नहीं, महाराज ! यूँ टालने से काम न चलेगा। ज्योतिष-शास्त्र-पारंगत देवतुल्य बुद्धगुप्त की गणना निष्फल हो सके ऐसा तो विश्वास नहीं होता।

सम्राट—क्या है वह बुद्धगुप्त की गणना ?

मधुमयी—महाराज, गणना अदृष्ट के विषय में बताती है कि यदि सूर्य सदृश तेजस्वी युवराज आदित्य इस युद्ध पर जायेंगे, तो विजय तो अवश्य मिलेगी, किन्तु स्वयं युवराज विजयलक्ष्मी के कर-कमलों द्वारा प्रदत्त विजयमाल धारण किये हुए लौट कर राजधानी में प्रवेश न कर सकेंगे। उस समय वह विजय कितनी कठोर कितनी हास्यास्पद होगी, इसका क्या निश्चय है ? कुमार के प्राण घोर विपत्ति से युद्ध करेंगे। कुमार की प्राण-रक्षा एक

देवी द्वारा होगी, किन्तु कुमार उसे वञ्चिका समझ कर स्वयं अपने आप को ठग लेंगे। परिणाम क्या होगा यह कौन कह सकता है, किन्तु सम्राट प्राणप्रिय कुमार के दर्शन फिर कर सकेंगे अथवा नहीं इस विषय में भी अदृष्ट निराशा सी ही उगलता प्रतीत होता है।

सम्राट—सुनो, सुनो, देवी! अदृष्ट क्या कहता है, सो क्या मुझे सुन नहीं पड़ता। अदृष्ट बलपूर्वक मेरे प्रिय चिर-सुकुमार योग्य पुत्र को महादेवी की चिर-शीतल, शान्तिदायिनी गोद से हरे लिये जा रहा है। किन्तु मैं दीन-हीन होकर कुछ भी नहीं कर पाता।

मधुमयी—महाराज, आप कहते क्या हैं? क्या कुमार को आप की इच्छा और अनुमति के बिना ही जाने की इच्छा हो रही है? क्या यह सम्भव है? क्या यह उचित है?

सम्राट—(सुनी अनसुनी करके) प्रातः स्मरणीय, धर्मात्मा, वयोवृद्ध पूज्य महासेनगुप्त के बालसखा विष्णुशर्म्मा, महा-बलाधिकृत कैरवगुप्त, कुमार-पादीय महानायक ऋषभगुप्त, सब ही तो कहते हैं, कि कुमार को जाना ही होगा। स्वयं आदित्य जननी के अनमोल अश्रु-बिन्दुओं से माँ, स्नेहमयी माँ, जननी जन्मभूमि के कष्टों पर न्योछावर होना अधिक श्रेयस्कर समझता है। देवी, मैं दुर्बल हूँ। पुत्र का भावी वियोग मुझे कातर बना रहा है, किन्तु तुम कदाचित समझ सको कि इस रत्न-खचित सुवर्ण मुकुट के नीचे एक एकाकी निराश और असहाय मस्तिष्क के करुण-क्रन्दन का न आदि है और न अन्त। जाने दो देवी! बहुत दिन हुए वह सुगन्धित मदिरा नहीं देखी। एक पात्र न........।

मधुमयी—(बात काट कर) नहीं, नहीं, सम्राट! सो न हो सकेगा। गुप्तवंश के सम्राट वारांगना नर्तकी के आवास पर इस दासी के सम्मुख मदिरा-सेवी न हो सकेंगे। जाइये, महाराज! जाइये, शीघ्र जाइये। यदि किसी प्रकार भी हो सके, तो अपने

एकमात्र वंशधर की रक्षा कीजियेगा। जाइये, महाराज! यहाँ अब एक क्षण भी और न ठहरें। देखिये, ज्वालाएँ निकटतर होती जा रही हैं। अच्छा, महाराज! प्रणाम।

(माधवगुप्त के चरण छूती है। महाराज का मूक प्रस्थान। माधवगुप्त के जाते ही रोती हुई मधुमयी धरती पर लोट जाती है।)

मधुमयी—आह! दुर्दन्त! मैं किस पथ पर जा रही हूँ? नीलाकाश से परे स्वर्णलोक के वासी, वैतरणी पार नन्दन कानन में विचरने वाले, दिव्य शरीरधारी देवताओ! साक्षी रहना। भगवान बुद्ध! तथागत! मुझ अभागिनी पर दया करो। (हिचकी लेकर) यावज्जीवन जिसकी मूर्ति का ध्यान करती रही उसे···हाँ उसे ही कुचक्र द्वारा विष?·····पर यह कैसे हो सकता था? किन्तु बुद्धगुप्त की शिक्षा? भगवान बुद्ध तथागत का मूक अलक्ष्य आदेश? ओह! मैं भूल गयी थी, कि मैं बौद्ध हूँ और संघ की रक्षा के निमित्त मुझे वैष्णव सम्राट की हत्या करनी ही पड़ेगी। कितना जघन्य, कितना कठोर और कितना असह्य दण्ड है, जब कि वह सम्राट मेरा अपना चिर-पूजित हृदय-मन्दिर में स्थापित किया गया हुआ देवता हो। कहाँ नीचतापूर्ण वध का प्रस्ताव, प्रतिज्ञा, आदेश और स्वीकृति और कहाँ गुप्त गणना की बात कह बैठी! नारी, नारी की सृष्टि तुमने क्यों की थी विधाता? यदि·····की ही थी, तो उसके हृदय को इतना कोमल बना कर उसके चारों ओर इतनी वज्रकठोर तप्त अग्नि-शलाखाएँ क्यों रख दी थीं? मेरी इस निर्दोष करुणा का उपहास न करो भगवान! ·····'आचार्य बुद्धगुप्त कहते हैं कि मैं पाप कर रही हूँ··· (हिचकियाँ ले लेकर रोती है) प्रेम करना भी पाप है? भगवान, इस पाप का प्रायश्चित्त मैं अन्तकाल तक रौरव नरक में रह कर भी प्राणों की ज्वाला से करती रहूँगी। किन्तु देव! प्रतिहिंसा की तीव्र ज्वाला को मेरे इस नीच हृदय में किसी दिन भी न सुलगा

देना।······ (रोते-रोते हिचकियाँ लेती हुई) हाय !······ज्वाला ! ······हृदय ! शान्त हो। भगवान ! नारी की चिर-जीवित दुर्बलताओं का अन्त कर दो देव !···हाय ! ··(गिर पड़ती है)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

(युद्ध-शिविर के बाहर। हरी हरी घास का सुन्दर मैदान। चारों ओर युद्ध का सामान)

महानायक ऋषभसेन—रामभट्ट, तुम्हारा युद्ध-गीत सुने अनेकों वर्ष बीत गये। इस वृद्धावस्था में एक बार फिर गुप्त-साम्राज्य का गान सुना कर तृप्त न करोगे ? ज्ञात होता है कर्ण-कुहर, आर्य चन्द्रगुप्त आदि महापुरुषों की विजय-गाथा सुने बिना किसी तरह भी तृप्त न हो सकेंगे।

रामभट्ट—महानायक ! ऐसा हो सके तब तो इस वृद्ध का जीवन धन्य हो जाय, किन्तु पञ्चनद-वासी हर्षवर्धन के हृदय में यह यशोगान ठेस न पहुँचावेगा ?

ऋषभसेन—उहूँ, चलो, शिविर की ओर चलें, यह अवसर फिर न मिलेगा। रामभट्ट तुम्हारा उदीयमान कुमार आज युद्ध-यात्रा पर जा रहा है ! रामभट्ट ! क्या आज इस शुभ दिन और इस शुभ अवसर पर समस्त शक्तियाँ एकत्रित कर गुप्त-पूर्वजों में से किसी का यशोगान कर सकोगे ?

रामभट्ट—भली प्रकार कर सकूँगा महानायक ! यह वृद्ध स्वर भी कुमार की कल्याण मंगल प्रार्थना-हित युवा हो उठेगा।

[शिविर की ओर जाते हैं। आदित्य दोनों को प्रणाम करते हैं। आदित्य सैनिक वेश में सुसज्जित हैं।]

ऋषभसेन—युवराज, वयोवृद्ध रामभट्ट आज हमें अभी स्कन्दगुप्त का गीत सुनायेंगे। सैनिकों को आज्ञा दो कि प्रांगण में एकत्रित हों।

आदित्य—महाप्रतिहार! ऐसा ही हो।

(सब सैनिकगण एकत्रित होते हैं)

सैनिकगण—सम्राट माधवगुप्त की जय! कुमार आदित्य-सेनगुप्त की जय!

आदित्य—दादा, आरम्भ करो!

(गाना धीमा-धीमा, बहुत धीमा होते होते वीणा तीव्र हो उठती है। स्वर प्रखर हो उठता है।)

यह कौन चला आता है?
शिशिर-गगन में चन्द्रकला शत।
जीवन-घन में ज्योति-प्रभा नव॥
देव ब्राह्मण ममता हृदयगत,
ज्योति-प्रभा लाता है।
वह कौन चला आता है?
विस्मृति के नव खण्ड खण्ड मम;
तृणाकृत साकार जननि तव।
वीरों की वैभव अगरु सम,
विजयामृत लाता है।
यह कौन चला आता है?
शस्य श्यामला जननि पयोधर,
शत्रु सैन्य कर दें जब विषसम,
नृत्य करें मानवता-शव पर,
यह कर दण्डित आता है।
यह कौन चला आता है!

स्वागत कर निज वीर जनों का,
हृदय-रक्त कर दान मातृहित।
दे सन्तति निज प्राण जाति-हित,
वरदान यही लाता है।
यह स्कन्दगुप्त आता है॥
यह कौन चला आता है?

(धीमा धीमा होते होते स्वर डूब जाता है।)

आदित्य—आर्य्य स्कन्द की.........

सैनिक—जय हो.........

(क्रमशः आर्य्य चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य, स्कन्दगुप्त आदि का गम्भीर जय जयकार)

(सैनिक तितर बितर हो जाते हैं।)

आदित्य—(स्नेहपूर्वक रामभट्ट के चरण छू कर) दादा, आशीर्वाद दो कि पुनः लुप्त गुप्त-साम्राज्य-देवी, राजलक्ष्मी द्वारा वर प्राप्ति कर तुम्हारे चरण छू सकूँ।

रामभट्ट—(सस्नेह) आर्य स्कन्दगुप्त तुम्हारे सहायक हों! भगवान भुवन-भास्कर का आशीर्वाद कुमार तुम्हारे शीश पर छत्र हो कर चमके!

आदित्य—किन्तु दादा आज न जाने क्यों आर्य स्कन्दगुप्त का गान उतना कर्णप्रिय न हो सका (आकाश की ओर देखकर) यह क्या? आर्य समुद्रगुप्त की भस्मावशेष ज्वाला में तड़पते हुए नभस्थित अंगार के समान तुम्हारे नेत्र लालिमायुक्त क्यों हैं? आर्य! आर्य! गम्भीर जलधि-जल के समान अश्रु-बिन्दु तुम्हारे उज्ज्वलतम नेत्रकणों में क्यों छाये हैं? वराह भगवान कुशल करें! आर्य, मुझे मार्ग दिखाओ। प्रभु! गुप्त-कुलदेवी की चरण-वन्दना

योग्य हो सकूँ, ऐसी सामर्थ्य दो, यही वरदान चाहता हूँ। दादा मेरा चित्त अधीर हो रहा है।

रामभद्र—युवराज! आप पुरुष-श्रेष्ठ, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री-रामचन्द्र के वंशज हैं, अधीर न हों। गुप्त-लक्ष्मी आपके ही द्वारा पुनः सिंहासनापन्न होगी। वृद्ध रामभद्र अपने केश-दन्त-विहीन मुख पर केवलमात्र ज्योतिहीन नेत्रद्वय लेकर वह दिवस देखने के लिए ही जीवन की कठिन आराधना करता रहेगा कुमार! भारत का भाग्य-सूर्य उदय होने ही वाला है।

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

(देवप्रिया देव-मन्दिर में जाती है। शिव के मन्दिर में चारों ओर घृत-दीपक प्रकाशित हैं।)

भूपाली राग

जय! भुजंग गंग-धारी दयामय!

लम्बोदर! गजसुत! मनोहर कर त्रिशूल परशु-वर धारे।
देश जननि की रक्षा कर दे सैनिक-जन-गण दास तिहारे॥
रणचण्डी आवाहन करने कर कृपाण जौहर व्रत धारे।
देश जाति पर शीश चढ़ावें, सैनिक-जन-गण दास तिहारे॥

माँ! दुर्गे!! काली!!! रणचण्डी!!!! यदि मैंने यावज्जीवन अपने पूज्य शिव-तुल्य स्वामी का ही ध्यान किया हो, देवी! यदि मैंने तुम्हारे समान ही अपने देवता स्वामी के चरणों में जीवन और मृत्यु को स्वार्थ रहित हो समर्पित कर दिया हो, माता! यदि मेरे पातिव्रत्य में कोई शक्ति शेष हो तो देवी! मेरे इस स्वर्ग-तुल्य, वैष्णव-सुत-पूजित पितृ-कुल की दुर्गति न होने देना, देवी! मेरे इस नन्हें से आशाओं के केन्द्र, लाल, मेरे आदित्य,

मेरे भाई के कठोर तीर बाल भी स्पर्श न कर सकें। तुम माँ हो, इस कोमल नारी हृदय के साथ कहीं भूल कर भी उपहास न कर बैठना। अग्नि शिखा, ईंधन का सूखा काष्ठ पाकर दूने वेग से प्रज्वलित हो उठती है। यह युद्ध की अग्नि मेरे हृदय की ज्वालाओं को अधिकाधिक प्रज्वलित कर सके, यही मेरी चिर-साधना का फल हो! इस दीन-हीन किन्तु भूत के गर्भ में अतुल गौरव छिपाये हुए गुप्त-साम्राज्य की रक्षा आदित्य के द्वारा ही हो सके। देवी! यही वरदान देना। (प्रणाम करती है)

(श्रीमतीदेवी साधारण महादेवी की वेश-भूषा में प्रवेश करती है)

श्रीमतीदेवी—देवप्रिया! आदित्य को गये आज पूरे लम्बे बारह वर्ष व्यतीत हो गये। किन्तु कहाँ है मेरा कुमार? मेरी आशाओं का केन्द्र!

देवप्रिया—(गम्भीरता तथा प्रेम से) माँ! व्याकुल न हो! कुमार सानन्द सिप्रा तट पर पहुँच गये। उन्हें शत्रुओं को शीघ्र ही धराशायी करते देर न लगेगी। माँ, तुम्हारी कोख में शयन करने वाला पुत्र महावीर है, तेजस्वी और शिव समान कल्याणकारी है। इस प्रकार अधीर होकर उस एकमात्र महान अमंगल की आशंका न करो। स्वयं भगवती गौरी मातृत्व की सर्वोत्कृष्ट प्रतिमा तुम्हारे मातृ-हृदय की मंगल भावनाओं की रक्षा करेंगी।

श्रीमतीदेवी—(देवी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके) माँ! भगवती! अम्बे गौरी! यह विस्मरण न कर देना कि तुम माँ हो। मेरे आदित्य की रक्षा करना। माँ! इससे अधिक तो मैं कुछ भी नहीं चाहती। (फिर प्रणाम करता है)

देवप्रिया—माँ, तुम्हारे पुत्र से भी अधिक प्रियवर श्रेयस्कर हैं इस देश के वह वीर सैनिक जो प्रतिदिन ज्वलित प्रलयाग्नि में प्राणाहुति दे देकर माँ काली की तृप्ति कर देश की मंगल कामना

करते हैं, माँ! उनके कल्याण की कामना ही सर्वश्रेष्ठ और सर्व-प्रथम कर्तव्य है।

श्रीमतीदेवी—(कुछ क्रोधित सी) हा! तू ने ही तो मेरे सुकुमार लाल को प्रलय की अग्नि में झोंक दिया। अब मेरे हृदय-खण्ड के स्थान पर क्यों न इस मृत्खण्ड देश की ही कल्याण-कामना करेगी? अभागी! क्या वह स्वर्णोज्ज्वल, हिम-श्वेत, कोमलाङ्ग कुमार तेरा सहोदर नहीं है? क्या मुझ अभागी के गर्भ में तुम्हें दोनों को ही स्थान नहीं मिला था? हा! भुवन-भास्कर! तुम साक्षी रहना! मेरी ही निर्बल गोद में पल कर यह दोनों मनुष्य हुए हैं। हा हन्त! आज सधवा सुपुत्रवती होकर भी मेरी गोद सूनी है। (रोती है)

देवप्रिया—माँ, ज्योतिषी का तो वचन है कि कुमार चक्रवर्ती सम्राट होंगे। अधीर न हो, अदृष्ट अमिट होता है।

श्रीमतीदेवी—प्रिया, क्षमा कर बेटी, मुझे सब कुछ याद है, किन्तु तेरी यह अभागी माँ अपने दुर्बल मातृत्व के कारण ममता की मारी, अपने प्रिय पुत्र की रक्षा के लिए आरम्भ से ही वीर-पुत्री होकर भी अनेक अकार्य करती रही। मुझे तो ज्ञान है, जानते हुए मैंने कभी उसे हिम खण्ड की भाँति कुल-गौरव-गाथा-स्वरूप सूर्य किरणों की ओर न जाने देने में त्रुटि नहीं की। देश के प्रति अन्याय कर उसके भावी भाग्य विधाता को अपने नारी-अञ्चल के नीचे छुपाये रक्खा, किन्तु इस सब के पीछे नारी है, एक दुर्बल माता है बेटी!

देवप्रिया—माँ, इस प्रकार धैर्य न छोड़ो। तुम्हारा कोमल ममत्व भाव मैं क्या पहचानती नहीं? केवल अवस्थादोष से चंचल होकर कभी कभी तुम्हें रुष्ट कर बैठती हूँ। माँ, शान्त हो।

श्रीमतीदेवी—सो बात नहीं, प्रिया! माँ बन कर भी तुम माँ

के हृदय को नहीं जान सकीं। तुम्हारा पवित्र, सुकोमल नारी-भाव, मातृभाव और रमणी का निष्फल ममत्व, सब स्वदेश-प्रेम के नीचे तिल तिल कर भस्म हो गया। किन्तु मैं यह कैसे विस्मरण कर दूँ कि मैंने ही कोख में धारण कर सर्वप्रथम उसका चन्द्रमुख चूमा था और प्रशस्त ललाट पर वर-दान-स्वरूप कल्याणकारी, मन्त्र-पूत जल छिड़का था और मैंने ही उसके प्रशस्त उज्ज्वल बाल, नहीं, नहीं, युवा-ललाट पर रक्त-चन्दन दे, उसे हँसते हँसते युद्ध के लिये विदा कर दिया था।

देवप्रिया—माँ! यही तो तुम्हारे योग्य है! तुम्हारे वीर पुत्र के योग्य है! गौरवशाली गुप्तवंश की वधू के योग्य है! इसी से तो कुमार की गुप्तसाम्राज्य की विजय-कथा घर घर हर्ष से गाई जा रही है।

श्रीमतीदेवी—(अत्यन्त दुःखी होकर आँखें पोंछती हुई) हाँ, ठीक है किन्तु सिप्रा के तट पर विजय भी पराजय से कहीं कठोर हो उठती है, यह क्या मैं गुप्तकुल की अभागी महादेवी, गुप्त-राज की वधू आज भुला चुकी हूँ? कुछेक सैनिकों को लेकर रक्त-चंचला सिप्रा के तट पर युद्ध-विद्या में नौसिखिया मेरा बालक असंख्य शत्रुसेना के विरुद्ध क्या कर सकेगा? यही चिन्ता मेरे हृदय को मथे डालती है, बेटी!

देवप्रिया—माँ, गुप्तकुल की आदरणीय, सिंहासनासीन, राज-वधू के मुख से यह करुणाजनक, कातर वाणी शोभा नहीं देती। हमारा सूर्यसम तेजस्वी आदित्य चिरजीवी हो, विजयी हो, किन्तु, माँ? सारे देश के युवक तुम्हारे आदित्य-सम ही देशभक्त वीर और तेजस्वी हो कर चिरंजीवी हों, यही तुम्हारी देवप्रिया की विक्षिप्त कामना है।

(एक कटार आकर ठीक देवप्रिया के दाहिने कन्धे को छूकर कर दूर जा पड़ती है)

(शीघ्र ही महादेवी के पीछे खड़ी परिचारिका शब्द-बेधी प्रहार करती है। और मनुष्य के कराहने का अन्धकार में से शब्द सुन पड़ता है।)

देवप्रिया—(वीरत्व दर्प से तन कर) छिः! छिः! क्रीड़ा! कालिमा से आच्छादित गहन-रात्रि में, देव मन्दिर में, अलक्ष्य-रूप से, अस्त्र-शस्त्र-विहीन देवी के सम्मुख, नत-मस्तका कन्या पर प्रहार करने वाला तो महान अघ-सेवी है ही, किन्तु तुमने इस अकलंक देव-मन्दिर को अपवित्र क्यों किया? शीघ्र आहत व्यक्ति की सेवा करके इस पाप का प्रायश्चित्त करो। चलो देखें तो सही।

परिचारिका—देवी! यह महा-दुष्ट बौद्ध गुप्तचर सदैव आपके पीछे पीछे घूमा करता है। इसका मुख्य उद्देश्य आपकी हत्या है। क्षमा करें, देवी! अनजाने भावावेश में देवी के प्रति अपराध बन पड़ा। (प्रतिमा को प्रणाम करती है)

देवप्रिया—भूलती हो, क्रीड़ा! नारी की वास्तविकता कुसुम-सम निरुद्देश खिल कर मुरझाने में ही है, यदि कोई उसे असमय ही मुरझा कर हर्ष प्राप्त करता है तो उसे अवसर दो। फिर बौद्ध तो हमारे भाई ही हैं। भगवान बुद्ध के प्रति आज दिन भी हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। वह द्वेष करें तो करने दो क्रीड़ा! किन्तु भारत के पवित्र वक्षस्थल पर अपनी ओर से भाई के प्रति उठे हुए सद्भावों की साम्प्रदायिकता के नाम पर हत्या न करो। ओह! यह क्या महादेवी मूर्छित हो रही हैं। (उपचार में लग जाती हैं)।

[पट-परिवर्तन]

पञ्चम दृश्य

[गंगा का सुहावना तट—एक सुन्दर नौका पर दो नवयुवक तीक्ष्ण वेग से नदी की छाती चीरते हुए जा रहे हैं। एक का मुख अत्यन्त कोमल तथा भावपूर्ण है।]

एक युवक—(थम कर) ज़रा ठहरो तो कोण ! ज्ञात होता है, आत्मा शरीर से दूर—सुदूर कहीं गगन-मण्डल के विस्तृत आसन पर एकान्त नृत्य करने भाग जाती है और फिर ......फिर कभी भी लौट कर आना नहीं चाहती। अपरिचित युवक ! कोण ! तुम कौन हो ? क्या तुमने कहीं इस शरीर-वासिनी आत्मा को देखा था ? नहीं. नहीं, तुम्हें क्या कभी ज्ञात हो सकता था ? वह तो निर्भयरूप से क्रीड़ामग्न है। हाँ, हाँ, देखो यह आ रही है। शीघ्र, अति वेग से आ रही है। आने दो, रोको मत। ओह ! तुम क्यों रोक लोगे ?

कोण—युवराज, क्या आप मुझे नहीं पहचानते ?

आदित्य—आह, कौन ! युवराज तुम होगे ? क्यों कोण तुम्हारा देश कहाँ है ?

कोण—दुर्भाग्य ! नदी के विस्तृत तट पर एक जीर्णशीर्ण देश है। लोग जिसे यमलोक कहते हैं। वही मेरा देश है। वहाँ का चिरस्वामी यमराज मेरा चिर-सखा है।

आदित्य—ओह, सुन्दर देश है। क्या सच ? वहाँ क्या और लोग भी रहते हैं ?

कोण—बहुत ही कम युवराज।

आदित्य—मेरा नाम युवराज है क्या ? तुम्हें यह कहाँ से ज्ञात हुआ कोण !

कोण—(नेत्रों में अश्रु भर कर, अपने आप) हा हन्त, यह भी देखना था। इतने पर ही दुर्भाग्य का अन्त न होगा क्या ?

आदित्य—कोण, देखो, चन्द्र का नदी में प्रतिबिम्ब कितना सुन्दर दीखता है ? (कुछ ठहर कर) एक गाना सुनाओगे क्या ? वही, वही चन्द्रकिरण वाला।

कोण—(वीणा उठा कर) सुनो, सुनाता हूँ।

गौढ़ सारंग

कित गई चन्द्रकिरण सुखदाई ?
श्याम जलज की हिय-फुलवारी नीर भरती उलझाई।
दव किरणें चिर-सिक्त मलिनता देखत हृदय भर लाई॥
कर पावन उसको क्षण भर में नीरव रात्रि बसाई॥
जीवनपथ पर मधुकरी मैंने संचित करी, लुटाई॥
करुणा का जो दान दे रहे मुझको कभी न भाई॥

आदित्य—ओह ! तुम मौन हो गये ? ना, ना, मौन न हो। मेरे हृदय पर एक आघात सा पहुँचता है। मुझे ज्ञान पड़ता है कि तुम मेरे उस दूर वाले जीवन के चिर-परिचित साथी हो, किन्तु नहीं, तुम तो अपरिचित हो ना ? फिर भी मेरी समस्त भक्ति, समस्त श्रद्धा तुम्हारे चरणों पर झुक जाती है। (कोण काँप उठता है) हाँ, तुम तो कहते थे कोण, कि हम कहीं दूर जायेंगे। हाँ, तुम वह जो सुन्दर कथा कहते थे, सिप्रा के तट पर, वह राजपुत्र कौन था ?

कोण—ना, ना, कुमार हम कहीं नहीं जायेंगे। क्या आपने कभी भ्रमर को प्राप्त पंकज त्यागते देखा है ? मेरे आराध्यदेव ! तुम कैसे समझोगे कि यावज्जीवन जिसकी एक चित होकर आराधना की है, उसे पाकर, कोई भी रमणी सहज ही न छोड़ सकेगी। तुम मेरे हो, केवल मेरे कुमार ! तुम्हारी जागृति की घड़ियाँ दुष्ट बौद्धाचार्य्य के प्रहार से कदाचित मेरी, कृपण के धन की न्याई, चिर-संचित अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए ही सुप्त हो गईं। युवराज, यह ही सत्य है।

आदित्य—क्या कहते हो कोण? मैं तो कुछ भी न समझ सका।

कोण—ओह, मैंने भूल की। यह मेरे प्रेम की नहीं, देवता की न्यांई आराधना की वस्तु हैं। इसे नारी आँचल में छिप कर रहना नहीं होगा। जागो कुमार! हे सूर्य्य भगवान! हे बराह भगवान! कुमार की स्मृति को यदि मेरे हृदय का रक्त लेकर भी दे सको तो दो। मैं दुर्बल नारी इन्हें रणक्षेत्र से लाई ही क्यों? सिप्रा की अनुपम विजय के पश्चात युवराज की सेवा करने योग्य अनेकानेक वैद्य मिल जाते, किन्तु कैसी भयंकर थीं वह घड़ियाँ? अग्नि की तीव्र कराल शत जिह्वाएँ चारों ओर से मानों युवराज के कोमल गात्र को हड़पने चली आती थीं।

आदित्य—यह कौन सी कथा कह रहे हो कोण? मैं तो कुछ भी न समझ सका।

कोण—मुझे कह लेने दीजिये कुमार! बीच में ही न रोकिये, अन्यथा हृदय फट जायगा। मुझमें असीम साहस भर आया है।

आदित्य—किन्तु, यहाँ अग्नि तो कहीं भी नहीं है।

कोण—हा, दुर्बल नारी अपने स्वार्थपूर्ण क्षणिक सुख पर अपने आराध्य देव के भविष्य का बलिदान न कर। रमणी, नारी, त्याग कर उसके लिये जिसे तू समस्त हृदय से प्रेम करती है। यही तेरा अतुलनीय पुरस्कार होगा। एवमस्तु।

आदित्य—क्या कह रहे हो कोण, मेरा जी व्याकुल होता है।

कोण—चलिये युवराज! चलें। रात्रि व्यतीत होने में अधिक विलम्ब नहीं है। सूर्य्यदेव की अर्चना आज अवश्य ही करनी है।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

— —

तीसरा अङ्क

प्रथम दृश्य

[गुप्त साम्राज्य का विशाल सभा-भवन। एक रत्न-जड़ित बहुत भारी छत को एक सौ आठ सुवर्ण-स्तम्भ रत्न और माणिक्य से सुसज्जित, उठाए हुए हैं। भवन के पृष्ठ भाग में एक मंच बना हुआ है। रजत निर्मित मंच पर बहुमूल्य वस्त्रों के ऊपर एक स्वर्णासन बिछा हुआ है। सिंहासन गरुड़ की न्यांई पक्षी सा जान पड़ता है। उसकी चोंच के स्थान पर अत्युत्तम रक्तवर्ण माणिक्य जड़ा हुआ है। मंच के पीछे महाबली सुबोधगुप्त नामी साम्राज्य-भक्त गरुड़ध्वज थामें खड़े हैं। सिंहासन पर स्वयं सम्राट माधवगुप्त विराजमान हैं। मंच के नीचे पूज्यपाद विष्णुगुप्त, ऋषभगुप्त, कैरवगुप्त, धर्माध्यक्ष शाकल्यशर्मा आदि अपने अपने स्वर्ण अथवा रजत आसनों पर विराजमान हैं। महादेवी श्रीमतीदेवी सम्राट के बाईं ओर सिंहासनासीन हैं। देवप्रिया मंच के पिछले भाग में एक आसन पर विराजती हैं।]

विष्णुशर्मा—सम्राट, महाबलाधिकृत कुमार भट्टारक पादीय महाबली कैरवगुप्त उपस्थित हैं, तथा श्री चरणों में कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

माधवगुप्त—आओ, भाई कैरव, क्या कहना चाहते हो? इस जीर्ण-शीर्ण शरीर में छिपा हुआ हृदय, भग्न-हृदय, अब भी चिर-स्मरणीय प्रिय मित्रों का अपमान कर सके ऐसा विक्षिप्त तो नहीं हुआ है! कहो, भाई, कहो। साम्राज्य भर में आज कुमार कहलाने वाला प्रिय युवराज आदित्य नहीं है, इसी से क्या इस शक्तिहीन वृद्ध बुद्धि-अन्ध सम्राट से कुछ कहने की आवश्यकता हुई? भाई कैरव, इस सम्राट-नाम-धारी व्यक्ति ने गुप्त-कुल-लक्ष्मी का बलिदान अत्यन्त तत्परता से सुदूर-स्थित बौद्धराज के चरणों में कर दिया। यही कहना चाहते हो क्या?

विष्णुगुप्त—महाराज, कहते क्या हैं! इस प्रकार अधीर होने से तो कुमार का कल्याण नहीं हो सकेगा। महाराज, शान्त हों।

माधवगुप्त—ठीक कहते हैं, पूज्यवर! किन्तु देश-देवी ने मेरे पाप का मुझे अच्छा दण्ड दिया। मुझे असमय में ही प्रजा-प्रिय, देश-भक्त, वीर-शिरोमणि आर्य समुद्रगुप्त के अनुकूल उनके वंशज से हाथ धोना पड़ा। दैव, तुम साक्षी होना, यही मेरा उपयुक्त दण्ड है। हाँ, कहो कैरव, पुत्र-हीन यह व्यक्ति अधिक वाचाल हो गया है। मधुर-वाणी-रस से तृप्त करने को आदित्य अब रहा ही कहाँ है इसी से न?···अच्छा कहो।

कैरवगुप्त—(अत्यन्त दुःखी तथा अधीर होकर) यह तुच्छ व्यक्ति भारतखण्ड के एक मात्र अधीश्वर परमवैष्णव, परमभट्टारक, परम-परमेश्वर सम्राट माधवगुप्त के श्रीचरणों में निवेदन करता है, कि इस अभागे व्यक्ति को श्रीचरणों में यह सूचना देनी पड़ती है, कि मेरा पुत्र वीरों में अग्रगण्य श्रीगुप्त, सालवटी दुर्गाधिपति महाराज के परम-मित्र तथा वीर-शिरोमणि जिनके साथ सम्मुख युद्ध में ठहर सके ऐसा वीर पृथ्वी पर कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ था—देवयक्ष का एक मात्र वंशज सालयक्ष, स्वर्गीय महाराज महासेनगुप्त के हस्तदक्षिण, अनेकों युद्धों में उनकी रक्षा

करनेवाले वीर महानायक यशोधवलदेव का पौत्र गुणधवलदेव, गुप्ताकाश की सर्वोज्ज्वल किरण स्वर्गीय महानायक चन्द्रकिरणदेव का एक मात्र पुत्र शिवकिरणदेव आदि युवा सेना-नायक लगभग बीस सहस्र पदातिक तथा अन्य सैनिकों के साथ विद्रोही हो गये हैं। सिप्रा के तट पर एक भी ऐसा वीर नहीं था जो उनके शुभ्र पवित्र शरीरों पर अंगुली भी लगा सके।

माधवसेन—कहते क्या हो कैरवगुप्त? क्या यह भी विश्वास करने की बात है? मेरे सारे मित्रों के वीर पुत्र, इस भग्न गुप्त-साम्राज्य के अन्तिम स्तम्भ एक एक करके इस प्रकार गिर रहे हैं। नहीं, नहीं, तुम इस वृद्ध से यह कठोर परिहास क्यों कर रहे हो?

कैरवगुप्त—नहीं महाराज, यह परिहास नहीं है। और यदि है भी, तो विधाता का निर्दय, निर्मम कठोर परिहास है। सम्राट आपकी लौटने की आज्ञा पाते ही मैंने स्वयं उन्हें श्रीमहाराज का निवेदन सुना दिया था। सम्राट, वह युवा सैनिक सुनकर उछल पड़े। सर्वप्रथम नन्हें सालयक्ष ने कठोर लोह अस्त्र निकाल कर श्री अज्ञातवासी कुमार के हेतु शिरस्त्राण छूकर प्रणाम किया और फिर घुटने पर टेक कर उस तलवार के दो टुकड़े कर डाले। कहने लगा कि सम्राट से निवेदन कर देना कि हम सम्राट के दास नहीं हैं। हमारा नन्हा सम्राट तो इसी सिप्रा के जल में अनेकों वीरों सहित जल को रक्त वर्ण कर स्वयं भी खो गया है। हम उसे खोजेंगे अन्यथा स्वयं भी शत्रुओं के शीश छेद कर गुप्त-कुल-लक्ष्मी के अंक में स्थान प्राप्त करने सिप्रा के रक्त वर्ण-जल में चिर-काल के लिए निद्रागत हो जायेंगे।

विष्णुगुप्त—साधु! साधु! क्या यह सत्य है कैरवगुप्त! अथवा केवल एक कथा मात्र की पुनरावृत्ति कर रहे हो?

कैरवगुप्त—कथा नहीं कहता, यह घटना ही है। इस प्रकार उत्तेजित होकर उस नदी तट पर सब युवा नायक विद्रोही हो

गये। सब से छोटे दन्तिवर्मा ने तो यहाँ तक कह डाला कि सम्राट से सत्य सत्य कह देना कि अब कोई बाधा न होगी। अच्छी तरह पञ्चनद-वासियों के साथ प्रेम-शृङ्खला दृढ़कर लें। युवराज के अतिरिक्त और किसमें साहस था कि उन्नत-मस्तक हो चल सके। सम्राट अपराध क्षमा हो वह सब युवक हैं। (हाथ जोड़ कर) नीति और धर्म के अनुसार इस अभागे बलाधिकृत ने सब कुछ निवेदन कर दिया, अब जो श्रीमहाराज की इच्छा हो! न्यायदण्ड आप के हाथ में है। विचार करें। उन अभागे विद्रोहियों का न्याय विचार कर उन्हें दण्ड दें। किन्तु अब इस वृद्धावस्था में आर्य्य देवयज्ञ, आर्य्य यशोधवलदेव और चन्द्रकिरणदेव के वंशजों को सम्राट के सम्मुख विद्रोही के रूप में उपस्थित कर सकूँ, ऐसा साहस तो मुझमें नहीं है। अतः चिर-कालीन सेवा के उपलक्ष में महाराज मेरा त्यागपत्र स्वीकृत हो, यही नम्र निवेदन है। (शिरस्त्राण छूकर प्रणाम करता है। इसके पश्चात् तलवार सम्राट के सम्मुख जाकर नतमस्तक हो मंच के नीचे रख देता है।)

श्रीमतीदेवी—(व्याकुल होकर) मेरे एक लाल ने तो मेरी गोदी सूनी कर ही दी है। अब क्या महाराज आप इसी गोद में पल कर मनुष्य हुए सालयज्ञ, श्रीगुप्त, नन्हें दन्तिवर्म्मा, गुणधवल, बाल हरिकिरण आदि को भी मुझ दुःखकातरा की गोद से छीन कर ही सुखी होंगे? यह कैसा भीषण न्याय का नाटक होगा महाराज? जन्मदात्री क्या उनकी माँ कभी कहलाई जा सकती हैं? कभी नहीं। किसी दिन भी उन्होंने क्या इस माँ को छोड़ कर किसी शुभ अवसर पर अन्य किसी माँ का, जन्मदात्री माँ का ही इतना प्यार, इतना आदर पाया था? महाराज, वह इस साम्राज्य की वृद्धा महादेवी के पुत्र हैं। इस वृद्धा पर दया करो सम्राट। (रो उठती है)

देवी प्रभा—(समीप जाकर) माँ शांत हो। पिता अधिक दुःख

वेग से अत्यन्त आतुर हो उठे हैं। माँ शान्त हो। तुम्हारे आदित्य सहित सारे पुत्र चिरजीवी हों।

श्रीमतीदेवी—मेरा पुत्र चिरजीवी हो! हाँ, मेरे सारे पुत्र चिरजीवी हों! सम्राट मैं इस लोक और परलोक दोनों में विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि मेरा आदित्य जीवित है। मैंने कभी भी गर्व, हास्य या अभिमान से भी पातिव्रत्य के किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया है। मेरा पुत्र अकाल में ही काल-कवलित हो सके ऐसा असम्भव है, असम्भव है।

(द्वार पर) कुमार आदित्यसेनगुप्त की जय हो! कुमार चिर-जीव हों! महाराज-कुमार की जय!

महादेवी—आह! किसकी जय? मेरा आदित्य जीवित है? आदित्य आ गया? आदित्य··· (मूर्च्छित हो जाती है)

माधवसेन—कुमार, कुमार, आदित्य?

(कुमार आदित्यसेनगुप्त अन्य नवयुवक सेनानायकों के साथ धीरे-धीरे सभा में प्रवेश करके सम्राट माधवगुप्त के चरण छूता है।)

माधवसेन—पुत्र तुम आ गये? बड़ा विलम्ब किया, युव-राज! बच्चे तुम आ गये। सचमुच आ गये। (दोनों परस्पर गाढा-लिंगन करते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

[गंगा का विस्तृत तट—अर्धरात्रि खिली हुई चाँदनी]

कोण—(गाती है)

टूटता क्यों तार मन का।

मैं अन्धेरे में खड़ी हूँ, है प्रकाश यहाँ कहीं क्या?
तम भरा मन प्राण मेरा, बोझ ढोता ही चले क्या?
और फिर थक कर अचानक छोड़ दे मन साथ तन का।

टूट जाने ही को बनता है यहाँ नित तार निर्मल,
नष्ट होने के लिये निर्माण फिर होता है सुविमल।
भग्न क्यों फिर हो न जाये यन्त्र बनता विश्वमन का।
टूटता क्यों तार मन का॥

आह! कठोर साधना का यह फल? मैं जन्म जन्मान्तर की अभागिनी हूँ। नहीं, नहीं, मैं अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी हूँ। मेरा आराध्यदेव सुखी है, निज प्रियजनों में आनन्दित है। बराह भगवान! साक्षी रहना मैंने स्वयं अपने हृदय को, अपने हाथों निकाल कर उसकी प्रसन्नता के लिये दूसरे के हाथों में सौंप दिया। आकाशमंडल में चिरोज्ज्वल नील वर्ण तारिकाओ! साक्षी रहना कि कोण संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी से भी अधिक सौभाग्य-शालिनी है। उसका स्वामी उससे सेवित होकर सुखी है किन्तु वह स्वयं! ओह, हृदय में एक टीस सी उठती है। मैं उन्हें इसी कोमल कन्धे पर उठा कर अनेकों मील चल कर श्यामग्राम वैद्य के पास पहुँची थी। कितनी सुन्दर थी वह रात्रि? रजनी-रमणी अपने स्वामी चन्द्र के चरणों में पड़ी मुस्करा रही थी और मैं अपने चिर-प्रिय स्वामी के चरणदेश में पड़ी, अतुल सौभाग्या-नन्द उठा रही थी। यामिनी नारी-सुलभ लज्जा से काँप उठी, किन्तु दूसरे ही क्षण स्वभाव-दौर्बल्य वश ईर्ष्या से सुलग उठी। मेघ मित्र ने यामिनी की सहायता की। वर्षा की बूँदें पृथ्वी को चूमने लगीं। मेरा स्वामी नारी के दुर्बल हृदय तले छिपा था। मेघ पराजित हो भाग गया और यामिनी लज्जित हो चन्द्र स्वामी को अवगुण्ठन-पट में छुपा सो रही। भला स्वामी त्याग कर नारी को अन्य स्थान पर शरण कहाँ? सौभाग्य से स्वामी पूर्वावस्था को प्राप्त हुए, परन्तु अकारण ही दासी पर ऐसी अकृपा क्यों? औषध-जल की सहायता से दस दिवसोपरान्त अराध्यदेव ने नेत्र खोलकर मानो दासी पर देव-विनिन्दित सुख-वर्षा कर डाली। मैं फूल उठी, किन्तु स्वामी यह जान कर कि सिप्रा तट पर उनकी

विजय तो हुई, पर वह अनेकों मासों से मेरे ही साथ हैं, न जाने क्यों विचलित से हो उठे। कितने कर्णकटु थे वह शब्द! "कोण तुमने विश्वासघात किया। तब क्या महाप्रतिहार का कहना ही सत्य था कि उसने तुम्हें बौद्ध-विहार में देखा था? तब क्या बुद्धगुप्त के संकेत पर ही तुम मुझे युद्ध क्षेत्र से उठा भागे थे। बौद्ध! क्या तुम्हारी इच्छा मुझे इस एकान्त में सदैव के लिये सुलाकर, बौद्ध-विहार की स्थिति सुरक्षित करना ही था?" मैं चुप रही। स्वामी के मुख से निकली यह विश्वास-हीन शब्द-शृङ्खला मेरी क्षत आत्मा को शरीर से बाहर क्यों खदेड़ नहीं पाई यही आश्चर्य्य है? (कुछ ठहर कर) भगवान, रमणी इतनी दीन क्यों है? अबला क्यों है? क्या यह समझ सकूँ इतनी बुद्धि मुझ में कभी भी न आ सकेगी? कुमार जैसे देवता सरीखे पुरुष भी जब मुझ पर अविश्वास कर सकते हैं, तो फिर इस दीन रमणी पर अखिल विश्व में कौन विश्वास कर सकेगा? और फिर वह ही विश्वास करेंगे, इसका क्या विश्वास? ना, ना, इसका प्रायश्चित्त यदि मैं न कर सकूँ तो नारी जीवन ही व्यर्थ होगा।

मधुमयी—(सहसा प्रवेश करके) क्यों बहिन तुम कौन हो? और इस प्रकार उत्तेजित क्यों हो रही हो? इतना उत्तेजित होना भी क्या उचित है? तुम हो कौन जो नारी-जीवन को व्यर्थ कर रही हो?

कोण—(भक्तिपूर्वक प्रणाम करके) ओह, आप? देवी, आपने मुझे नहीं पहचाना; मैं वही हूँ कोण, आपकी परिचारिका!

मधुमयी—ओह, भला अब तुम्हें कैसे पहचान सकूँगी? अर्ध-प्रस्फुटित-कलिका प्रफुल्लित होकर सर्वाङ्गपूर्ण सौन्दर्य्य प्रतिमा कुसुम जो हो गई है, सो भी पुरुष वेश में! यह क्या? तुम सैनिक हो अथवा बालिका? अपमान कैसा? और वह भी स्वामी के निकट? कैसा आश्चर्य्य है यह?

कोण—देवी, आपने मुझे अमृत तक पहुँचाया तो सही, किन्तु मैं उसकी रक्षा न कर सकी। मैंने अपने आचार्य की अनुचित इच्छा के विरुद्ध कार्य्य किया तो किन्तु मिला क्या? अपमान, स्वामी द्वारा आघात, आघात। अनजाने ही निरपराध ही स्वामी ने विश्वासघाती कह कर लांछित किया। क्या यह नारी का अपमान नहीं है? मैं तो उन्हें सम्पूर्ण हृदय से ध्याती रही और उनका यह कटु व्यवहार, निर्दय और व्यंगपूर्ण अपमान!

मधुमयी—मूर्ख, कैसे समझ सकोगी? स्वामी के चरण कमलों के समीप नारी की सर्वश्रेष्ठ गति है। फिर अपमान कैसा? मान और अपमान की सृष्टि नारी के लिये हुई ही नहीं है। बालिके, जो तुम्हारे जीवित आराध्यदेव हैं, उनका बिना प्रतिदान की इच्छा किये हुए, एकान्त-भाव से ध्यान करो, पूर्णरूप से साधना करो। यही नारीत्व के विकास की चरम सीमा है। यही रमणीत्व का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

कोण—किन्तु देवी! उन्होंने मुझ पर अविश्वास किया। मेरे साथ घोर अन्याय किया।

मधुमयी—तुम बालिका हो और मैं नारी। बिना विकास को प्राप्त हुए कुसुम-जन्य पराग सुगन्ध नहीं देता। यह कैसे जान सकोगी कि इस सृष्टि के एक नितान्त एकान्त कोण में बसने वाली यह नारी तुम्हारे बालिका हृदय से सम्पूर्णरूप से परिचित प्रतीत होती है? किंतु, अभागी हिन्दू नारी! अपने देवता में अविश्वास न करो। तुम्हारे शब्दों से अभिमान झलकता है। तुम्हारे सुन्दर मुख पर गर्व प्रतिभासित होता है। नारी! मान और अभिमान, गर्व और अहंकार, निजी अस्तित्व, सर्वस्व त्याग कर लीन हो जा उसी में। इसी में तेरी गति है। पुत्री! यावज्जीवन दुःख के समुद्र में डूबी रह कर भी यदि इस नीच,—किन्तु आराध्यदेव को समर्पित-हृदय-अर्घ्य को नीच कैसे कहूँ—हृदय में कुछ एकत्रित कर

पाई हूँ तो वह है पतंग का बलिदान। उसको देखकर...बलिदान कर दे, प्रतिदान क्या करेगी नारी ही तो है तू।

कोण—देवी ! क्या आप सत्य कहती हैं ? आपके शब्दों से मुझे अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है। हृदय एक बारगी हर्ष से उछलता सा ज्ञात पड़ता है।

मधुमयी—(ध्यान न देकर) अपने अस्तित्व के त्याग करने पर ही वह ज्योति उत्पन्न होगी, जो तुझे तेरे देवता के समीप पहुँचा देगी। एक बार तुझे साथ ले जाकर फिर रख न सकी थी। इस बार साथ न ले जाऊँगी। फिर भी यह अधम, पतिता नारी तुझे आशीर्वाद देती है, कि तू पूर्ण रूप से नारी बन सके। इससे अच्छा तो और कोई आशीर्वाद मैं न जान पाऊँगी।

(प्रस्थान)

(कोण प्रणाम करती है)

कोण—विचित्र है, यह रमणी ! ज्ञात होता है, हृदय के स्थान पर भगवान ने इसके शरीर में केवल मात्र प्रेम ही प्रेम भर दिया है। आह ! यदि मैं भी नारी बन सकूँ।

(पट-परिवर्तन)

— —

तीसरा दृश्य

(गंगाद्वार, कुमार आदित्य अकेले हो धीरे धीरे टहल रहे हैं)

आदित्य—ग्रीष्म के तीव्र ताप को हृदय की अन्तिम तह में छिपा कर जब पृथिवी शान्त, गम्भीर और सुरमणीय हो उठती है, तो प्रलयाग्नि भी उसकी सहनशीलता का, सर्वोत्कृष्टता का उत्कट उदाहरण देख कर उसके शीतल, शुभ्र, चरणों में लोट जाती है। यही है, उसके उन्नत त्याग की चरम सीमा, किन्तु उस अतुलनीय देवोपम त्याग के

किसी अज्ञात कोण में, किसी स्वार्थ-रन्ध्र द्वारा नीच प्रवृत्तियाँ प्रवेश न पा सकेंगी, इसका क्या प्रमाण है ? कोणदेव अतुलनीय वीर, साहसी और योद्धा था। कैसा कमनीय मुखमंडल था! उज्ज्वल प्रशस्य ललाट ! स्नेह-पूर्ण नयनद्वय थे ! किन्तु ऐसे शरीर में भी स्वार्थी हृदय वास कर सकता है यह कौन जानता था ? देवप्रिया के अतिरिक्त ऐसा विशुद्ध प्रेम तो मेरा किसी पर भी न था। प्रेम-पूर्ण हृदय के प्रति यह विश्वासघात ! ओह ! यह क्या हुआ ! आर्य !······आर्य ! (आकाश की ओर गम्भीर दृष्टि से देखता है।) आप क्या कहते हैं ? हाँ, ठीक ही तो है······टूटने के लिए ही स्फटिक मणि की सृष्टि हुई है। घिस डालने से ही चन्दन की सफलता है। क्या यह सच है ?······क्या सचमुच ? आर्य्य !······भग्न हो जाने में ही हृदय की पूर्णता है ? नहीं नहीं, वह मेरा मित्र अवश्य है, किन्तु विश्वासघाती मित्र की आराधना क्या क्षत्रियोचित है ? आर्य्य, यह कैसी विडम्बना है ? आप यह अनार्योचित शिक्षा क्यों दे रहे हैं ? मेरा हृदय टूटता है, तो टूटने दीजिए। उसकी सृष्टि टूट-टूट कर अनेकों टुकड़ों में बँट जाने के लिए ही हुई है। उसे भग्न होने दूं। कोण मेरा था ही कौन ?

(देवप्रिया का प्रवेश—कुछ चिन्तित सी जान पड़ती है। मुखमुद्रा साधारण, शान्त, एवं गम्भीर है।)

देवप्रिया—भइया, देखती हूँ, तुम तो दिन पर दिन अधिक एकान्तसेवी होते जा रहे हो। क्या मस्तिष्क-विकार अभी पूर्ण-रूप से स्वस्थ नहीं हुआ ? राजवैद्य तो निश्चिन्त से हो गये हैं। कहते थे कि आदित्य के लिए अब कुछ चिन्ता नहीं है। वह सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ है।

आदित्य—नहीं, नहीं, बहिन, यह मस्तिष्क-विकार नहीं, हृदय विकार है।

देवप्रिया—यह क्या भइया ? युवा सैनिक, गुप्त कुलादित्य क्या अपना हृदय इस प्रकार युद्ध-मेघ से घिरे हुए गुप्ताकाश के तले खो दिया करते हैं ? क्या यह सर्वथा उचित है ? देखती हूँ मेरी जन्म भर की साधना व्यर्थ ही होगी।

आदित्य—देवी, मेरा एक मित्र था। अत्यन्त प्रिय, 'अत्यन्त वीर और विश्वसनीव। देवी, क्या विश्वास करोगी ? यह स्वार्थ-वश मुझे रणक्षेत्र से उठा ले गया। सम्भवतः वह बौद्ध था' उसने मुझसे विश्वासघात किया। देवी, मेरा हृदय, विश्वासी हृदय, स्फटिक मणि की न्याईं उज्ज्वल हृदय, कठोर प्रस्तरशिला पर पटक कर चूर चूर कर दिया गया। उसने मुझे इतने काल तक राज्य से पृथक रख कर कर्तव्यच्युत कर दिया। मैं उसे कैसे क्षमा कर सकूँगा ?

देवप्रिया—आदित्य, कौन विश्व में कह सकेगा कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ और माता नहीं ? स्तनपान के अतिरिक्त माँ ने तुम्हारे लालन पालन में क्या किया था, सो तो मुझे किसी तरह भी स्मरण नहीं आता, किंतु मेरी गोद में पोषित होकर मानव कहलाने वाला बालक, इतना अस्थिर और अधीर होगा यह तो मैं कल्पना में भी नहीं ला सकती थी ? आदित्य, वीरों को अधीर होना क्या शोभा देता है ! और फिर, जीवन में अनेकों बार हृदय को अपने हाथों से निकाल कर वज्रशिला-गत कर चूर्ण-चूर्ण कर देना पड़ेगा। फिर उस चूर्ण को स्वयं ही हँसते हँसते कठोर, भयंकर अग्नि ज्वालाओं में झोंक देना होगा। कब तक अबलाओं की न्याईं आँसू बहाओगे ? उठो, तुम पुरुष-सिंह हो वैसा ही व्यवहार करो।

आदित्य—तुम देवी हो। सचमुच बहिन, इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षण के मेरे दुःखी, दुर्बल हृदय में साहस भरती रहना बहिन ! (चरण छूता है)

देवप्रिया—तुम्हारी बहिन हूँ ना इसी से। (पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

[बौद्ध विहार में एक लम्बा चौड़ा कमरा। महास्थविर का आवास।
महात्मा बुद्ध की भिन्न भिन्न अवस्थाओं और आकृतियों की
प्रतिमाएँ स्थान स्थान पर रक्खी हैं। एक ओर बुद्ध
गुप्त कुछ अस्थिर से बैठे हैं।]

बुद्धगुप्त—महा-सुगन्ध-युक्त चन्दन क्या चिता पर रख देने पर घृणा से सिकुड़ कर अग्नि स्पर्श नहीं कर पाता ? फिर भी कैसी विधि की विडम्बना है कि उसे महापवित्र देव-प्रसाद मान कर आदर दिया जाता है ? फिर वही चन्दन, मलयगिरि-उत्पन्न चंदन, यह भली प्रकार जानता है कि समय और काल अनुकूल न होने पर भी स्वभावगत गुण त्याज्य नहीं हो जाता। माना कि सद्धर्म के समस्त प्रयत्न, नदी-तट क्रीडार्थी बालक की अदूर-दर्शी रजकण द्वारा अवेध्य भवन-निर्माण की चेष्टाओं के समान ही असफल हो रहे हैं। कुमार आदित्य मृत्युग्रास बन कर भी, निरंग अपंग और निराश्रित होकर भी, पुनः जीवित हो उठे और अभागिनी सद्धर्म अभिशपिता कोण दुग्ध-सेविता भुजंगी-सम सद्धर्म को ही अपने प्रयत्नों से उन्मूलित कर डालने को तत्पर हुई बैठी है। उसी के कठोर संयम और विचित्र साहसपूर्ण प्रयत्न से कुमार जीवित राज्य में लौट सके हैं। (दाँत पीस कर) ऐसा विश्वासघात ! सो भी सद्धर्म के साथ ! भगवान बुद्ध की न जाने क्या इच्छा है ? (प्रतिमा को प्रणाम करता है) फिर एक बार प्रयत्न कर देखूँ। नहीं नहीं, समस्त प्रयत्न तो शरद ऋतु में मेघमाला के समान छिन्न होते क्षण भी तो नहीं लेते। फिर यह महास्थविर का उत्तरदायित्व-पूर्ण पद। एक बार फिर······देखूँ तो सही। (करतल-ध्वनि करता है।)

एक भिक्षु—(प्रवेश करके) आज्ञा गुरुवर।

बुद्धगुप्त—पत्र, मसि, लेखनी आदि सामग्री ले आओ।

भिक्षु—जो आज्ञा आचार्य्य। (प्रस्थान)

बुद्धगुप्त--हाँ, और भी सुनो, बुद्धकीर्त्ति को भी हमारी आकांक्षा की सूचना तुरन्त दे दो।

भिक्षु—(लौट कर) जो आज्ञा गुरुवर।

बुद्धगुप्त—नेत्रों के सम्मुख न जाने कैसा अन्धकार सा जान पड़ता है। ज्ञात होता है, तथागत का मुख्य उद्देश्य अधूरा ही रह गया। बाल्यकाल में गुरुदेव अत्यन्त प्रेम से शिक्षा देते थे, "पुत्र! सद्धर्म से भी महान एक धर्म है और वह है, विश्वधर्म।" सद्धर्म में सदैव विश्वधर्म की सारगर्भित व्याख्या खोजने का यत्न करना। यावज्जीवन सद्धर्म को प्यार करते हुए, सद्धर्म की सेवा में समस्त मन, वचन और कर्म को अर्पण करके भी विश्वधर्म की व्याख्या कहाँ पाई? ज्ञात होता है, कि वह विश्वधर्म की व्याख्या किसी अज्ञात अचिन्तनीय अन्धकारपूर्ण गर्त में अविचार से डाल दी गई। बुद्धकीर्ति कहता है, कि गुरुवर द्वेष से बढ़ कर कोई पाप नहीं। भले ही वह किसी के सर्वनाश के लिए न होकर सद्धर्म-हित ही हो, फिर भी सन्तोष नहीं होता। कुमार आदित्य की बात सोचते ही लगता है, कि मानो नाड़ियों में कोई तप्त-लोह-संचार कर रहा हो। भयंकर ज्वाला द्वारा पीड़ित हृदय यह भूल जाता है, कि बौद्ध के लिये द्वेष, ईर्ष्या आदि दुर्दमनीय शत्रु हैं। हिंसक-प्रवृत्तियाँ एकत्रित होकर चिल्ला उठती हैं।

(भिक्षु गणना-सामग्री सहित प्रवेश करता है।) प्रभु, बुद्धकीर्ति शीघ्र ही स्वामी की सेवा में उपस्थित होंगे।

बुद्धगुप्त—एवमस्तु।

(भिक्षु प्रस्थान करता है)

[बुद्धगुप्त गणना करता है। ताम्र-पत्र पर ताम्रलेखनी से गणना की जाती है]

बुद्धकीर्ति—(प्रविष्ट होकर) गुरुवर, तथागत भी मानते थे कि सृष्टि में एक शृंखला है, एक नियम है। उस ऋत को वेध

कर कोई भी ऐसी शक्ति नहीं जो उसके पार जा सके। गुरुवर, एक साधारण शिला नदी के आवेग को रोक सके, ऐसी शक्ति कौन सी है उसमें? कुमार का लग्न निशंक रूप से कहता है कि आदित्य चक्रवर्ती सम्राट होंगे। गणना को अन्यथा कर सके ऐसी संसार में कोई शक्ति नहीं। व्यर्थ समय नष्ट न करें।

बुद्धगुप्त—आओ भाई, तुम जानते हो मैंने तुम्हें एक क्षण भी अन्य भिक्षुओं की न्यांई न जाना। तुम मेरे भाई हो, सहोदर हो। बुद्धकीर्ति, निराश न करो, यह अन्तिम गणना थी। इस बार भी हम पराजित होंगे। ज्ञात होता है, विधि का विधान यही है, कि कुमार चक्रवर्ती सम्राट हों और सद्धर्म की इति-श्री हो जाय। मैं क्या करूँ? यह वृद्ध महास्थविर क्या करे? यह मन्दिर, यह विहार, यह सब कुछ शून्य हो जायगा।

बुद्धकीर्ति—अधीर न हों, गुरुदेव! आदित्य सद्धर्म का द्वेषी नहीं; गुप्त-सम्राट, गुप्त युवराज कोई भी सद्धर्म का द्वेषी नहीं। केवल सद्धर्म को ही समयानुसार उदार बनना होगा। गुरुश्रेष्ठ! कन्दराओं में प्रवेश न पाने से ही सूर्य, भुवन-भास्कर को सन्ध्या काल मुख छिपा कर अस्ताचलगामी हो जाना पड़ता है। ब्राह्मण धर्म की अनुदारता ने उसे ग्रस लिया था। सद्धर्म भी यदि उदार न हो सकेगा तो इसे भी नष्ट होना ही पड़ेगा। गुरुवर, उदार बनिये। विश्व-धर्म की खोज करिये।

बुद्धगुप्त—विश्वधर्म का नाम न लो भाई। यह भयंकर विषधर की तरह मेरी ओर बढ़ कर मेरे समस्त पापों की, मानसिक संकीर्णता की याद दिलाता है! किन्तु नहीं, मैं बौद्ध हूँ सद्धर्म की रक्षा ही मेरा सब से प्रथम कर्तव्य है। इस कर्तव्य की रक्षा मुझे हर प्रकार से करनी ही पड़ेगी। चाहे यह सत्साधनों से हो, अथवा अन्य किसी भी प्रकार के साधनों से। मुझे यह करना ही पड़ेगा।

बुद्धकीर्ति—स्थविर, यह बुद्धि-चाञ्चल्य आपके योग्य नहीं। स्थिर-बुद्धि होकर विचार कीजिये। समय के अनुसार जो परिवर्तित न हो सके, उस धर्म की सृष्टि भी, मानव जाति की मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए केवलमात्र एक बाधास्वरूप हो जाती है। महा-स्थविर इस बाधा को उल्लंघन कर सृष्टि के विकास, आध्यात्मिक विकास के लिए सद्धर्म को विश्वधर्म बना डालिए। उदार विश्वधर्म ही मानवजाति का कल्याण कर सकेगा।

बुद्धगुप्त—विश्वधर्म!······कीर्ति!······विश्वधर्म! मानव··· का कल्याण······यह मैं कैसे कर सकूँगा?

(पट-परिवर्तन)

पञ्चम दृश्य

[घोर रात्रि, बवंडर का घनघोर शब्द चारों ओर भयंकर सन्नाटा]

कोण—उपास्य-देव की चिरकाल तक कठोर उपासना-तपस्या और विचित्र साधना करने के उपरान्त ही गौरी को शंकर की प्राप्ति हुई थी। वज्र-कठोर, विष-तुल्य तीव्र कठिन साधना और फिर मधुर-मृदु मिलन की घड़ियाँ यही सृष्टि का चिर-सत्य नियम है। इसकी अवहेलना कर सके, ऐसी कोई शक्ति मुझे तो आज पर्यन्त प्रतीत हुई नहीं। कठोरता में ही मृदुता का कोमल आभास होता है। करुण, अतृप्त, तड़पती वासना में ही संसार का सर्वोपम त्याग निहित है। विष के तीव्र रस में ही अमृत का अमरत्व छलछला रहा है। यही सृष्टि का चिर-सनातन नियम है। इसकी पूर्ति में ही विश्वकर्मा का सृष्टि नियन्तृत्व छिपा हुआ है। फिर साधना से विरक्ति क्यों? विष से घृणा क्यों? वासना से भय खाकर भागना किस लिये? इन्हीं सब में अपना अस्तित्व खोकर ही तो महत्त्व की प्राप्ति की जाती है। इन्हीं परित्यक्त वस्तुओं में

व्याप्त होकर चिर-नूतन सत्य युग युग की मधुर प्रणय-कथा वर-दान की भाँति बरसा सकेगा। किन्तु फिर भी हृदय की अन्तिम तह में कभी कभी एक हूक सी उठती है। अतृप्ति में शान्ति की सृष्टि जान कर भी संतोष नहीं होता। ज्ञात होता है, कि एक वेदना-राक्षसी हृदय की सुकोमल, परम-पावन आकांक्षाओं को चूर्ण-विचूर्ण कर अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति करा रही है, किन्तु, यह क्या ? मैं विचलित हो रही हूँ ! नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकेगा। अतृप्ति में मुझे तृप्ति ढूँढनी ही होगी। यही मेरा ध्येय होगा और यही मेरी चिर साधना होगी।

मधुमयी—(सहसा प्रवेश करके) ओह ! चन्द्र-किरणों सी जाज्वल्यमान देवीरूपिणी बाला तुम अकारण पाप सी कालिमा-पूर्ण, घोर, अन्धकारमयी यामिनी में क्यों निद्रा-विहीन शून्य नेत्र खोले घूमती रहती हो ? ज्ञात होता है, अनुपम हृदय रत्न खो चुकी हो।

कोण—देवी, यदि नारी ही नारी हृदय को न समझ सकेगी तो और कौन समझ सकेगा ? किन्तु हृदय खोकर भी यह नारी-हृदय के गहन अरण्य में सुप्त नारी शान्त नहीं होती। वह पाने की इच्छुका है। पाना चाहती है, किन्तु खोना जानती है। देवी, खो तो चुकी हूँ अब पा किस प्रकार सकूँगी सो क्या आप बता सकेंगी ?

मधुमयी—(पास आकर पहचान कर) व्याकुल न हो, कोण ! प्रणय की भी एक निर्धारित सीमा है, जिसे कभी कभी उल्लंघन भी करना पड़ता है। किन्तुप्रणय की सृष्टि से परे, सुदूर, एक अन्य संसार बिखरा पड़ा है। जिसकी प्राप्ति प्रणय को सुलभ नहीं तो कम से कम विरह की कठिनता को न्यून अवश्य कर देती है। वह है, हृदय की एकान्त भावना का बलिदान अनेक हृदय की अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये। भ्रमवश अन्यथा न समझ लेना।

प्यारी बहिन, एक दिन इसी सत्य को यथार्थ में न समझ कर मैंने अपनी हृदयवासिनी सुप्त नारी को अपने दुर्दमनीय कठोर हाथों से ही हत्या कर डाली थी। कौन समझा सकता था उस समय कि शारीरिक तृप्ति से कहीं अधिक सेवा, कहीं अधिक अतृप्त हृदयों की तृप्ति आत्मिक क्षुधा की शान्ति के द्वारा हो सकती है?

कोण—देवी, क्या शारीरिक क्षुधा के अतिरिक्त भी मानव किसी और तृप्ति का आकांक्षी हो सकता है? क्या हृदय की तड़प के अतिरिक्त भी रक्त-मांस-पूर्ण शरीरधारी जीव, किसी और वस्तु की इच्छा कर सकता है और उसकी प्राप्ति पर सन्तुष्ट भी हो सकता है? क्या यह सत्य है?

मधुमयी—हाँ सत्य है कोण! मैंने अनमोल नारीत्व का सार-तत्त्व खोकर ही यह सत्य पाया है। एक पुरुष देवतुल्य आराध्य-देव की सेवा न कर सकने के कारण विश्व भर के अतृप्त हृदयों की तृप्ति करने चली थी, किन्तु हुआ क्या? अनेकों शरीरों में भी तीव्र लालसारूपी ज्वाला ही जला सकी, किन्तु किसी भी ज्वाला को शांत न कर सकी। किसी भी हृदय को तृप्ति, संतोष और शान्ति न दे सकी। और आराध्यदेव की चिर-उपार्जित उपासना से भी वंचित कर दी गई। नारी, रमणी, नारी बनो।

कोण—देवी, आपका आशीर्वाद सर्वांग पूर्ण हो, फलीभूत हो, किन्तु नारी किस प्रकार बनना होता है सो मैं अधम अबला किस प्रकार जान सकूँगी? वासना की अग्नि मेरे मानव-हृदय को तिल तिल करके भस्म कर रही है। फिर मैं रमणी न बन कर नारी बनना कैसे सीख सकूँगी?

मधुमयी—सो तो सीखना पड़ेगा। अपने आराध्यदेव की चिर-पुजारिन नारी बन कर, विश्व की माता बन कर, अखिल ब्रह्माण्ड को अपने मातृत्वपूर्ण हृदय की चिर-शान्त पवित्र छाया में युग युग के लिये सो जाने दो।

कोण—सो कैसे हो सकेगा देवी ? विलासिनी, वासना की पूर्ति के लिए व्याकुल यह नारी किस प्रकार अपने वासना की आकांक्षा-पूर्ण हृदय को मातृत्व के पवित्र रंग में रँग सकेगी ? क्या यह सम्भव है देवी ?

मधुमयी—अवश्य सम्भव है। सर्वथा सम्भव है कोण ! स्त्रीमात्र, माता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। स्त्री का दूसरा नाम है माता। मातृत्व छोड़ कर नारी के हृदय में और विधाता ने क्या भर दिया है, सो मैं नहीं जानती, किन्तु मेरा तो अखण्ड विश्वास है कि नारी के हृदय में मातृत्व-भाव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ! यदि वह भाव निकाल दिया जाये तो नारी-हृदय मांस-पिण्ड मात्र ही रह जायेगा।

कोण—क्या यह सत्य है, देवी ! रमणी को क्या माँ बन कर ही पूर्णत्व की प्राप्ति होगी ? स्त्री को क्या माता बन कर ही शान्ति मिलेगी ?

मधुमयी—यही तो कहती हूँ। चंचल, चपल, उच्छृङ्खल रमणी शान्ति-प्रतिमा, नारी-मूर्ति, माँ की शान्त प्रतिमा बन कर ही, गौरी जगज्जननी अन्नपूर्णा बन कर ही, शिव की, विश्वनाथ की, चिरयुग-स्थायी प्राप्ति कर सकेगी।

कोण—यत्न करूँगी माँ, कि वास्तविक अर्थों में नारी बन सकूँ, माँ बन सकूँ।

मधुमयी—आशीर्वाद देती हूँ कि शीघ्र ही जगज्जननी बन कर शिव की प्राप्ति करो ! अम्बा-गौरी के समान चिर-सौभाग्यवती नारी बन कर विश्वनाथ की त्रिभुवन-मोहिनी मूर्ति की प्राप्ति कर सको।

कोण—(विनय पूर्वक चरण छूती है।)

(पट-परिवर्तन)

———

छठा दृश्य

[आसवगृह, अनेकों सैनिक, स्थान-स्थान पर मदिरा का पान कर रहे हैं। आसवगृह का स्वामी नवीन दासी के साथ एक ओर बैठा ग्राहकों को वार्तालाप से प्रसन्न कर रहा है। अन्य दासियाँ तथा दास मदिरासेवी पुरुषों के पात्र भर रहे हैं। सुवर्ण पात्रों में सुगन्धित मदिरा बीच बीच में स्थान स्थान पर रक्खी है ।]

एक सैनिक—मलयकुमार, द्राक्षासव के तीन पात्र शीघ्र ही भेजो।

आसवगृह का स्वामी मलयकुमार—(नम्रतापूर्वक) लीजिये प्रभु, अवश्य लीजिये।

(नवीन दासी की ओर संकेत करके) रति, शीघ्र ही प्रभु को आसव दो तो सही। (धीरे से) कुछ लेना भी।

दासी–जो आज्ञा। (धीरे धीरे पात्र लेकर सैनिक की ओर आती है।)

सैनिक—(मदिरा का पात्र ओष्ठ से लगा कर तथा कुछ पीकर) सुन्दरी, तुम्हारा स्वामी मलय-कुमार अत्यन्त कठोर व्यक्ति है, जो उसने तुम जैसी निर्दोष सुन्दरी को ऐसे कठिन काम पर नियुक्त किया है।

दासी—नहीं, नहीं, प्रभु! वह तो अत्यन्त दयालु है। इससे पूर्व तो मुझे अनेकों कठिन कार्य्य करने पड़ते थे। कृषि हेतु बैल आदि भी समय समय पर चलाने पड़ते थे। मैं यहाँ अत्यन्त सुखी हूँ।

सैनिक—रति, यही तुम्हारा नाम है ना? हाँ तो मुझे तुम पर अत्यन्त दया आती है। या यूँ कहो, कि तुम्हें देख कर मुझे कुछ जान पड़ता है कि तुम मेरी निकटतम, प्रियतम व्यक्ति हो।

दासी—प्रभु, लज्जा की बात किससे करूँ? कल जब से आपको देखा है, मुझे स्वयं ऐसा जान पड़ता है, मानों स्वर्ग से देवताओं की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा शरीर धारण कर पृथ्वी पर आन पड़ी हो। अस्तु, जाने दीजिये। लाइये, पात्र भर दूँ।

सैनिक—नहीं, नहीं, रति! मुझे तुम्हारी मधुर शब्दावली अत्यन्त सुन्दर जान पड़ती है। मानो स्वर्ग से सुधा की निरन्तर वर्षा सी हो रही हो। तुम बोलती जाओ और मैं सुनता रहूँ, युगान्तर तक यही क्रम रहने दो। इसी से मुझे आनन्द होता है, तृप्ति होती है और होती है शान्ति।

दासी—किन्तु ऐसे निर्मोही प्रियतम को लेकर मुझे तो शान्ति नहीं होती।

सैनिक—सुन्दरी, तुम कहो तो सही, तुम्हें क्या कष्ट है? यह दास सेवा के लिये सदैव चरण समीप ही पाया जायेगा।

दासी—(आसव से पात्र भर कर) यह क्या आप यावज्जीवन की बात कह रहे हैं? निभा सकेंगे?

सैनिक—निभाऊँगा देवी! यदि इस युद्ध से लौट सका।...... ओह, क्या कह डाला?......महानायक ने शपथपूर्वक कहलवा लिया था कि यह बात किसी से भी न कहूँगा।

दासी—तब क्या यही आपका प्रेम है? यदि आप मुझे अभिन्न मानते होते तो पश्चात्ताप कदापि न करते। अस्तु मैंने आपका स्वभाव जान लिया। अब तो यद्यपि यावज्जीवन कुमारिका रह कर वियोगाग्नि में भस्म होती रहूँगी, किन्तु आपका मुख फिर कदापि भी न देख सकूँगी। अच्छा जाती हूँ। (जाने का उपक्रम करती है।)

सैनिक—अरे, नहीं, नहीं, सुनो तो सही, देवी!

दासी—(लौट कर) कहिये, क्या कहते हैं?

सैनिक—वह कोई तुमसे छिपाने की बात नहीं थी। केवल महानायक ने शपथ रखा दी थी।

दासी—नहीं, नहीं, मुझे आपकी बात सुनने का न अवकाश ही है और न आवश्यकता। प्रणय-गाथा सुनने को भी मेरे पास अवकाश नहीं। मुझे अन्य आवश्यक कार्य भी करने हैं। हा! दासी का जला भाग्य, यही दिन देखना था।

(रोने का सा नाट्य करती है)

सैनिक—(घबरा कर) ठहरो देवी! लो, तुमसे कहता ही हूँ। तुमसे अधिक प्रिय क्या मुझे कोई अन्य भी है? किन्तु देखो, इस पर गुप्त साम्राज्य का भविष्य निर्भर है। कहीं भूल कर भी किसी से न कह बैठना।

दासी—(लौटने का सा नाट्य करती है) जाने दीजिये, मुझे कुछ भी सुनना नहीं है। मुझे आपकी बातों से क्या लाभ। मेरा उनसे ही क्या संबंध है?

सैनिक—(हाथ पकड़ कर) क्षमा करो, देवी! सुनो, शीघ्र ही गुप्त-साम्राज्य की ओर से कन्नौज पर आक्रमण किया जायेगा। असावधानी में ही शत्रु नष्ट कर दिये जायें, यही गुप्त-महाबलाधिकृत की इच्छा है।

दासी—हाय! तब फिर तुम्हारे दर्शनों से भी वंचित होना पड़ेगा (रोती है) मैं तो तुम्हें किसी प्रकार भी न छोड़ूँगी। मेरे तो साम्राज्य अब तुम्हीं हो।

सैनिक—न घबराओ मेरी रानी! सो क्या मैं अभी थोड़े ही जाऊँगा। आक्रमण सम्भवतः तीन मास पश्चात् होगा। तब तक हम विवाह कर सुख से गृहस्थी जमायेंगे।

दासी—अच्छा, अब तुम प्रस्थान करो। कल इसी समय फिर आना, तब हम अपने भविष्य का कार्य्यक्रम बनायेंगे।

सैनिक—लो, यह मलयकुमार को दे देना। जो शेष हो सो स्वयं रख लेना। मेरा धन लेने में अब तुम्हें कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(दासी मुस्कराती हुई धन ले लेती है। सैनिक का प्रस्थान)

दासी—(मलयकुमार के निकट जाकर धन देते हुए, धीरे धीरे कहती है।) वर्षा शीघ्र ही फिर होगी। सम्भवतः इस बार कन्नौज पर बहुत मेघमाला एकत्रित हो रही है। इन्द्र दो तीन मास में ही वज्रप्रहार करेंगे। फिर भी अभी पर्याप्त काल है। भवन की मरम्मत शीघ्र ही आरम्भ कर देने से सम्भवतः विशेष हानि न हो सकेगी।

मलयकुमार—(गम्भीरता से कुछ चिन्तापूर्वक) हम तो अभी सुरक्षित भवन में ही हैं। वर्षा हमारा कुछ विशेष न बिगाड़ सकेगी, किन्तु दूर देश स्थित भाई बान्धवों को सूचित किया जा सके तो अच्छा हो।

दासी—ऐसा ही होगा। आप चिन्ता न करें। मैं अभी दो पहर रात्रि रहे चली जाऊँगी।

(पट-परिवर्तन)

———

चौथा अङ्क

पहला दृश्य

[एक सुन्दर किन्तु विशाल घास फूस निर्मित कुटीर—उसके चारों ओर घना वन तथा सामने की ओर सुन्दर उपवन। कोणा देवी का गाते हुए प्रवेश]

कोणा— देश के जीवन उठ उठ जाग।
भाग्य देश के सोये अब हैं।
सुप्त भयावह दुर्बल हिय हैं॥
सुना तो इसको साहस-राग।
देश के जीवन उठ उठ जाग॥
शक्ति-हीन दुर्बल माँ के कर।
आशीः देने को उठते हैं॥
हमारे देश विधाता जाग।
देश के जीवन उठ उठ जाग॥
युवक-मंडली क्या सोयेगी?
युवती क्या तलवार गहेगी?
प्राप्त भक्तिवर कर के जाग।
देश के जीवन उठ उठ जाग॥

(राग मालकौंस)

देश की प्यारी भविष्य आशा, माँ के बिखरे हुये फूलों की एकमात्र गुथी हुई डाली, कितनी कठिनाई से माँ भारत ने तुम्हें अपनी सर्वश्रेष्ठ हृदय-रक्त से सिंची हुई, हिमालय-छेवित गोद में स्थान दिया था। इसी पवित्र भूमि की धूलि में स्वयं भगवान भी अनेकानेक बार अवतार ले चुके हैं। इसी धूलि में आर्य समुद्र-गुप्त ने जन्म पाकर, जीवन धारण कर समुद्र से समुद्र पर्यन्त

अखण्ड राज्य किया था। गौ, ब्राह्मण, स्त्री और बालक की रक्षा के निमित्त असंख्य सुचारु धमनियों में प्रवाहित रक्त की अन्तिम बिन्दु तक बलिदान कर देने वाला देश-प्राण आर्य्य स्कन्दगुप्त इसी मिट्टी में खेल कर बड़ा हुआ था। इसी रजकण-शृङ्खला में उसने बाल्य-हृदय की सर्वोत्तम एवं सर्वप्रिय गाथाओं की माला गूँथी थी। यह पृथिवी मेरी आराध्यदेवी है। इस धरिणी पर आर्य चन्द्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ कर चिर-परित्यक्ता आर्य संस्कृति की रक्षा की थी। यही धूलि तो उन्हें मानव बना सकी। मेरे असंख्य बालकों में से यदि एक भी, केवल एक भी मानव बन सके! मेरी गोद में खेल कर एक भी यदि भारतीय, सच्चे अर्थों में माँ का सुपुत्र बन सके! एक भी यदि मृत गुप्त साम्राज्य की गौरव-गाथा को पुनर्जीवन प्रदान कर सके! उसकी गौरव-रक्षा में प्राण देकर भी कुमार के एकान्त ध्येय को सफल कर सके! (कुछ मानवीय दुर्बलता का अनुभव करती है) नहीं, नहीं, मुझे विचलित न होना होगा। आत्मिक सुख चिर-सत्य शान्ति के हेतु तुच्छ शारीरिक मिलन सुख का बलिदान करना ही होगा।

(एक बालक का सहसा प्रवेश)

बालक—माँ क्या कर रही हो?

कोण—आओ, बेटा, मेरे लाल, तुम्हीं लोगों को याद कर रही थी। तुम्हारे और साथी कहाँ हैं? बच्चे!

बालक—देवी मधुमयी से गणित की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। मैं भी वहीं प्रश्न हल कर रहा था, माँ! अचानक तुम्हारी उत्तेजित वाणी की ध्वनि सी सुनाई पड़ती जान पड़ी और मैं आ गया।

कोण—अच्छा लाल, जाओ, शिक्षा ग्रहण करो। तुम्हारी सत्शिक्षा ही देश के भविष्य का एकमात्र अवलम्बन है। तुम्हारे हृदय में भरे हुए अनेकों सद्भाव, देश के प्रति पागल प्रेम, देश

पर बलिदान हो जाने की उत्कट अभिलाषा ही देश की, माँ की, एक मात्र आशा है।

बालक—किन्तु माँ, देश के लिये तुम इतनी व्याकुल क्यों रहती हो? देश, भारत-माँ तो, देवी कहती थीं, स्वयं कल्याण-मयी है। सुजला, सुफला, और शस्य-श्यामला-माँ पर कौन सा कष्ट आन पड़ा है? और यह क्या कभी सम्भव है? कल्याण और कष्ट तो दो विभिन्नार्थी शब्द हैं। नहीं, माँ! तुम अकारण ही चिन्ता करती रहती हो।

कोण—मेरे बच्चे, यह शस्य-श्यामला-माँ निरन्तर विदेशियों के आक्रमणों के धक्के खा खाकर, अब शस्य-श्यामला न रह कर पूर्ण रूप से अन्धकारमयी हो गई है। बच्चे, तुम कैसे समझोगे, कि आज दिन देश में, आर्य्य महासेनगुप्त के सर्वोच्च महानायक की सन्तान के लिए एक टुकड़ा भूमि भी नहीं मिल सकती? इस सुजला भूमि में देश के सच्चे सेवक मरुभूमि की भाँति ही अन्न जल के कष्ट से व्याकुल हो प्राण त्याग देते हैं।

बालक—किन्तु माँ, हमारे देश में अन्न जल का कष्ट कहाँ है? भारत भूमि उर्वरा भूमि है। स्थान स्थान पर कृषक गण आनन्द से कृषिकार्य्य करते दृष्टिगोचर होते हैं। स्थान स्थान पर फल फूल दिखाई देते हैं, माँ! यह भूमि सुजला भूमि है। यहाँ कष्ट कैसा?

कोण—अन्न की कमी नहीं बच्चे! अन्न है, जल है, किन्तु फिर भी देश के कष्ट से निशिदिवस दुःखी रहनेवाले व्यक्तियों के लिये इस धन-धान्यपूर्ण राज्य में स्थान नहीं। उन्हें, विश्वास करो, अन्न और जल के अभाव से ही तड़प तड़प कर प्राण देने पड़ते हैं। फिर भी तुम कहते हो कि यह भूमि सुफला है। सिप्रा के तट पर मैंने स्वयं इन्हीं भौतिक नेत्रों से असंख्य पराक्रम-शाली वीरों को अन्नाभाव से, जलाभाव से मृत्यु का अकालग्रास होते देखा है। और मैं स्त्री, मैं मातृत्व की प्रतिमूर्ति खड़े-खड़े मूकभाव से

वह विचित्र मृत्यु क्रीड़ा देखती रही। देश में बौद्ध राजा का प्रभाव है। उदाराशय वैष्णव सम्राट गत-गौरव को हृदयकोण में निहित किये पड़े हैं। उनके सम्मुख ही उनके वीर पराक्रमी प्रिय महानायक दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। किन्तु, बौद्ध सम्राट के प्रभाव ने उनके तेज को मलिन कर दिया है। वह अपंग हैं। आज यदि समस्त उत्तरा-खण्ड में कोई हृदय, देश की कातरता से विवश हो, कातर हो उठता है, हाहाकार कर उठता है, करुण-क्रन्दन कर रो उठता है, तड़प उठता है, तो वह एक ही है।

बालक—ऐसा कौन सा व्यक्ति है माँ ? वह प्रातः-स्मरणीय, भाग्यवान व्यक्ति कौन है ? जिसे तुम भी आदर से देखती हो।

कोण—वह है, देवताओं द्वारा अभिषिक्त, वीर-शिरोमणि, प्रातः-स्मरणीय, सूर्य्य तुल्य तेजस्वी गुप्तसाम्राज्य का वर्तमान युवराज एवं भावी सम्राट। (स्वर कम्पन) उन्हीं देश के सच्चे सेवक के चरणों पर उनके संकेत मात्र से देशहित सर्वस्व बलि-दान कर सको, यही इस तुम्हारी माँ की आकांक्षा है, यही इसकी साधना है, यही इसके हृदय की सर्वोच्च विभूति है।

बालक—माँ, मैं देश के कल्याण के लिये शस्त्र धारण कर विकराल असिसेवी बन देश के शत्रुओं का अवश्यमेव नाश करूँगा। माँ, आशीर्वाद दो कि तुम्हारा यह बालक, माँ के इंगित-मात्र पर कण्टकाकीर्ण, किन्तु वीरोचित मार्ग पर सफलतापूर्वक चल सके। तुम्हारा अमर आशीर्वाद, देश और विदेश, दुःख और सुख दोनों में मेरे दैवी रक्षा-कवच से किसी प्रकार भी कम न होगा।

कोण—(आलिंगन करके) वराह भगवान तुम्हारी रक्षा करें! बच्चे, भूल न जाना। इस अभागिनी माँ से कहीं श्रेष्ठ एक अन्य माँ भी है। वह माँ इस तुच्छ माँ की भी उपास्यदेवी है। उसी माँ ने हमें भी जन्म देकर मनुष्य बनाया है। उसका हृदय

अमृतमयी शान्ति से पूर्ण है। उसके कुसुम-सुन्दर किरणोज्ज्वल मुख पर सदैव प्रफुल्लित, चिर-नव-मुस्कान निरन्तर विराजती है, किन्तु उसके चरणद्वय दुष्टों ने छल-बल द्वारा लोह श्रृङ्खला से बाँध डाले हैं। उस अनन्त की ओर देखो, क्षितिज में हँस रहा बाल सूर्य्य उसका प्रतिबिम्बमात्र ही तो है।

बालक—ओह! माँ की यह श्रद्धेय प्रतिमा बरबस सन्तान का सिर झुका देती है। कितनी सुन्दर है भारत माँ की मूर्ति!

कोण—(अपनी ही धुन में कहती जाती है) किरणसमूह में झाँक कर देखो, मेरे बच्चे! किरणों की प्रखर उज्ज्वलता उसी का आभासमात्र तो है। वह माँ विस्मरणीय नहीं। उसे विस्मृति के अन्ध गर्त में डाल कर चिर-स्मरणीय कोई वस्तु रह जाती हो, सो तो मैं नहीं जानती मेरे लाल! जान सकती भी नहीं। जाओ, शिक्षा ग्रहण करो, किन्तु इसी उद्देश्य से कि यह माँ के चरणों में अर्पित करने योग्य पत्र पुष्प मात्र ही है। इसके अतिरिक्त और इसका कोई भी, ध्येय नहीं, कोई भी उद्देश्य नहीं।

बालक—माँ, इच्छा होती है कि माँ की इस सौन्दर्य्यमयी मूर्ति के सम्मुख बैठ कर आज दिन यह प्रतिज्ञा करूँ कि जीवन में एक मात्र ध्येय, मेरी इस सौन्दर्य्यमयी माँ की चिरसाधना ही होगी। (चरण छूकर प्रस्थान)

कोण—ओह! कितने कष्ट से, कितनी कठिनाई से माँ की सर्व-गुणमयी प्रतिमा हृदय-मन्दिर में धारण करती हूँ। कितनी असहाय है नारी, कितनी दीन है रमणी की बिखरी हुई मानवता, उस मूर्ति के स्थान पर क्षणमात्र में ही एक मनुष्य प्रतिमा आन बैठती है। निर्णय नहीं कर पाती कि यह मेरी मानव-शरीर-जन्य दुर्बलता है, अथवा अगाध प्रेम। क्यों नहीं, मैं उस काल्पनिक प्रतिमा में ही बिना उसका स्वरूप परिवर्तित किये, प्रिय के दर्शन

कर पाती ? क्यों नहीं यह व्यथित हृदय, पीड़ापूर्ण पागल घड़ियों में भी प्रिय के चिर-सौन्दर्य-सिक्त दर्शन, आत्मा में ही कर पाता ? यह भौतिक शरीर के दर्शनों की आतुरता होती ही क्यों है ? मेरे अन्तरतम की दुर्बल नारी, तुम मृत्यु को प्राप्त हो, यम-लोक को जाओ, तुम नष्ट हो जाओ। मैं तुम्हारी दुर्बलता का भार न उठा सकूँगी। मुझे और अधिक पीड़ा न पहुँचाओ। हे नाथ, मुझे शक्ति दो, कि तुम्हारे विराटरूप में ही यह तुच्छातितुच्छ नारी, तुम्हारी दासी, अपने स्वामी के क्षणिक नहीं, वरन चिरस्थायी-भाव से दर्शन कर सके। इस नारी की यह दुर्बलता हर लो नाथ ! भगवान ! अन्यथा इसे कहाँ शरण मिलेगी ? मेरे प्रभु ! मेरे भगवान !

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

गुप्त साम्राज्य का अन्तरंग प्रकोष्ठ। महादेवी का सुसज्जित आवास। बहु-मूल्य वस्तुओं से स्थान सर्वथा भरा हुआ सा प्रतीत होता है। अत्यन्त सुन्दर सुरुचिपूर्ण स्वर्णासन पर एक तकिये के सहारे कुछ झुकी हुई सी महादेवी]

श्रीमतीदेवी—युद्ध ! युद्ध ! मानव का मानव द्वारा निर्जीव, कठोर, लोहअसि-द्वारा रक्त निकाला जाना, कितना भयानक है ! बाल्यावस्था में, याद आता है, एक बार प्रस्तर-शिला से टकरा कर मेरे मृग-शावक के दक्षिण स्कन्ध में से कुछ रक्त प्रवाहित हुआ था। रक्त देख कर मेरा हृदय समूचा ही प्रकम्पित हो उठा था। मैं स्वयं भी रुदन करने लगी थी। यह देख कर माँ ने हँस कर कहा था—"अरी क्षत्राणी ! क्षात्रधर्मावलम्बियों की सन्तान को तनिक से रक्त का इतना मोह ! जीवन में तुझे तो न जाने

कितना रक्त देखना पड़ेगा।" जान पड़ता है, उनके शब्द सर्वाङ्ग-पूर्ण अभिशाप होकर मेरे दुःखी जीवन पर बरस पड़े। एक मानव दूसरे मानव के हृदय का रक्त लोहअस्त्र द्वारा पृथ्वी पर बहाकर प्रसन्न होता है और दूसरा अपना रक्त देकर हर्ष से नाच उठता है। कैसी विडम्बना है? फिर भी संसार उसे क्षात्र-धर्म, मानवधर्म कह कर सम्मानित करता है। किस दुर्दिन में क्षात्र-धर्म की सृष्टि हुई थी।

देवप्रिया—(झटिति प्रवेश करके) माँ, क्षात्रधर्म पर क्षत्राणी होकर आज यह अकारण क्रोध क्यों उत्पन्न हो रहा है!

श्रीमतीदेवी—प्रिया, आदित्य अनेकों कष्टों से बच कर अभी तो मृत्यु के मुख से लौटा था। फिर युद्ध! यह कैसा पागलपन है? तू उसे निरन्तर युद्ध के लिये उत्तेजित करती रहती है। कभी यह भी सोचा है, कि युद्ध में वज्र-कठिन लोहा मनुष्य के कोमल हृदय का उष्ण लाल लाल रक्तपान करने के लिये ही होता है? मैं माँ हूँ। युद्ध में, अग्नि की कराल ज्वाला में ओह! रक्तदान करने के लिये पुत्र को भेजते समय की व्यथा क्या तू बहिन होकर भी नहीं समझ पाती? प्रिया! फिर तू भी तो किसी की माँ है?

देवप्रिया—माँ, आदित्य मेरा भाई है। उसे वस्त्राभाव भी नहीं भोगना पड़ता और उसके लिये भोजन का अभाव भी नहीं है। किन्तु, माँ! क्या वह मेरे भाई नहीं, मेरे लाल नहीं, जो सूर्य सम तेजस्वी महानायकों की सन्तान होकर भी अन्न-वस्त्र के अभाव से कष्ट पाकर मर रहे हैं। माँ, क्या वह आदित्य के समान ही तुम्हारी सन्तान नहीं? तुम माँ ही नहीं हो, वरन इस साम्रा-ज्य की महादेवी हो। साम्राज्य के प्राणीमात्र तुम्हारी सन्तान हैं। धर्म के नाम पर अचानक अग्निकाण्ड में शास्त्रार्थ-भवन जल जाने से निर्दोष जो असंख्य ब्राह्मण विद्वान हर्षवर्धन के हाथों

कष्ट पा रहे हैं, क्या वह प्रकाण्ड विद्वान तुम्हारी सन्तान नहीं है? माँ, तुम्हारा हृदय मातृ-भाव से पूर्ण है। तनिक दूर देखो माँ! क्षितिज के इस पार भी अनेकों दीन-हीन सन्तानें अकारण ही कष्ट पा रही हैं, दण्ड भोग रही हैं। और तुम्हारा लाल उनकी रक्षा करने में समर्थ है। माँ! उसे रक्षा करने दो। इसी लिये तुम्हारी पवित्र कोख की सृष्टि हुई थी।

श्रीमतीदेवी—किन्तु, प्रिया! युद्ध के पश्चात् क्या असंख्य पितृ-पुत्र-पति-विहीना रमणियाँ अपने करुण-क्रन्दन से समूची पृथ्वी को प्रकम्पित न कर देंगी? क्या शत्रुओं की माताएँ नहीं होतीं? उनके क्या बहिनें नहीं होतीं? उन्हें पत्नी की आवश्यकता नहीं होती? उनकी नारियों के हृदय में क्या मांस पिण्ड पड़ा हुआ नहीं होता? नारी होकर इतनी कठोर न बन, प्रिया!

देवप्रिया—माँ, शान्त हो। तुम्हारे पुत्र का बाल भी बाँका कर सके, ऐसा वीर तो आज तक पृथ्वी पर नहीं जन्मा। मंगलोत्सव की तैयारी करो माँ! वराह भगवान सब शुभ ही करेंगे।

श्रीमतीदेवी—अच्छा, वराह भगवान सब शुभ ही करेंगे। इसके अतिरिक्त और दुखिनी माँ कह ही क्या सकती है। तुम तो उसे युद्ध में अवश्य भेजोगी। अच्छा, भगवान ही कल्याण करें।

(प्रस्थान)

देवप्रिया—अपनी पुत्री को समझ सके, यह सुख भी माँ के भाग्य में नहीं है। इस कठोर, स्पष्टवादिनी नारी के दो रक्तवर्ण-मांस निर्मित होठों से परे चल कर भी कोई कोमल भावनाएँ हैं, इस पर कौन विश्वास कर सकेगा? आदित्य क्या केवलमात्र मेरा भाई है? क्या इससे बढ़ कर किसी भी कोख की सन्तान को माना जा सकता है? इसी कठोर-हृदया कर्तव्य-प्रस्तर-धारिणी नारी में भी एक अतृप्त दुर्बल नारी अनेकों बार रो उठती है। किन्तु इस सत्य पर क्या अखिल विश्व में कोई भी विश्वास कर

सकेगा ? नारी वीरांगना होने पर भी हृदय से नारी को छोड़ कर और कुछ कभी भी न बन सकेगी। किन्तु इस पर विश्वास होगा ही किसे ? देवप्रिया तो एक कठोर, प्रस्तर-हृदय-धारिणी नारी है ना ? फिर भी वह चिर सत्य है। आदित्य-तुल्य तेजस्वी मेरा नन्हा पुत्र जो दक्षिणस्थित राजभवनों में पल रहा होगा; माँ की इस व्यथा को क्या समझ सकेगा ? (आँसू पोंछ कर) मेरे रक्त-मांस के पुतले तू कहीं भी क्यों न हो, देश के कल्याणार्थ अपनी धमनियों में बहने वाले इस अपनी माँ के रक्त की अन्तिम बूँद भी हँसते-हँसते भेंट कर सके, इससे अच्छा और तो कोई आशीर्वाद इस गुप्त साम्राज्य की पुत्री के पास हो ही नहीं सकता। हे विश्वनाथ ! मैं तो सदैव ही यही एक प्रार्थना करती रही कि मेरे मातृत्व का विकास अनेकों पुत्रों द्वारा हो, और उनमें से प्रत्येक जननी जन्मभूमि, मातृप्रतिमा की स्थापना के हित अपने शरीर का अन्तिम रक्तबिन्दु तक रजकणों के स्थान पर विसर्जित कर डाले। इससे अधिक सुख और क्या हो सकता है सो मैं दीन नारी कैसे जान सकूँगी ? नाथ, यही वरदान इस चिर-उपासिका पर, यदि कभी प्रसन्न हो सको, तो मुक्तहस्त हो बिखेर देना। इसमें कृपणता न हो नाथ ! तुम्हारी यह दासी युग युग के लिये, जन्मजन्मान्तर तक धन्य धन्य हो जाएगी। (भक्ति पूर्वक प्रणाम करती है)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(युद्ध-क्षेत्र में एक शिविर)

आदित्य—युद्ध की घनघोर घटायें वेगवती हो चारों ओर से अग्निवर्षा कर रही हैं। जान पड़ता है, कि प्रलय समीप है, किन्तु फिर भी मानों कोई अलक्ष्य-हस्त मृत्यु के मुख से मेरी चुपचाप रक्षा कर जाता है। शत्रु का गुप्त षड्यन्त्र सफल हो चुका था। समस्त उत्तरापथ में कोई आदित्य को उस षड्यन्त्र का ग्रास हो यम के घर जाने से लौटा नहीं सकता था। संध्याकाल की डूबती हुई सूर्य्यकिरणों की न्यांई पीत-वस्त्रधारी बौद्ध, शय्या के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया था। समीप ही था कि उसका बलिष्ठ हाथ विषाक्त कृपाण को गुप्तवंशधर का उष्ण तथा उत्साही रक्त पिला कर शान्त कर दे। मेरे दोनों नेत्र जल उठे थे। ज्वाला मृत्यु की न थी! क्षत्रिय, मृत्यु-रमणी-का आलिंगन करने को तो निशि-वासर लालायित रहता है, किन्तु वह बन्दियों के समान, अपनी शय्या पर अपंग पड़े हुए शरीर की हत्या अत्यन्त कारुणिक थी। अचानक एक बलिष्ठ हाथ द्वारा फेंकी हुई एक अन्य लोह-आत्रिका कठोरतापूर्वक बौद्ध के हस्तदक्षिण को बेध गई। कैसा अपूर्व दृश्य था, चंचला चपला की न्यांई आती हुई असि, बौद्ध के चिर-साधन तप्त मांस में घुस गई। कैसा था यह अलक्ष्य हाथ! और कैसा अचूक लक्ष्य-वेध! फिर युद्ध में, परसों के ही सम्मुख युद्ध में, तो चिर-सुप्त योद्धाओं के मध्य से, भैरवियों के रक्तमंडित कलेवर और हर्षोन्मत्त ताण्डव के बीच से अचानक कोई शक्ति मुझे उठा कर यहाँ डाल गई। वह कौन है? कुछ, कुछ स्मृति धक्का देती है, कि एक बार पहले भी किसी मानवरत्न ने मुझ कृतघ्न के प्राणों की रक्षा अपने अमूल्य प्राणों की धरोहर रखकर की थी, किन्तु हतभाग्य! उस अनुपम त्याग में एक विषाक्त स्वार्थ रत था।

ओह ! कोण ! अब कहाँ होगा ? नहीं, नहीं, उसकी चिन्तना भी पाप है। गुप्तसाम्राज्य की प्रजा की सेवा में अर्पित किये हुए तन और मन में और किसी भावना को स्थान ही कहाँ ? प्रेम और कर्तव्य के भीषण संघर्ष में प्रेम का स्थान रहता ही कहाँ है ? जाने भी दो, विधाता ने सम्भवतः स्त्री को सर्वांग-कोमल बना कर उसके हृदय में भी अपूर्व प्रेम, ममता और त्याग भर दिया था। दूसरी ओर कदाचित पुरुष को कठोर कर्तव्य की शृङ्खला में बाँध कर, उसके हृदय में शून्यता की भरपूर सृष्टि कर उसके अन्तर में रक्ताक्षरों से केवल एक ही शब्द लिख डाला था और वह शब्द था "कर्तव्य"। कर्म ? कर्म की प्रचण्ड ज्वाला से बच कर भाग जाने का न उसे अवसर है और न अवकाश। यही तो पुरुषत्व है। इसीलिए तो विधाता ने उसे पुरुष करके निर्मित किया है।

(एक चर का प्रवेश)

चर—वयोवृद्ध सेनानायक उपस्थित हैं।

आदित्य—ओह कठोर कर्तव्य ! फिर कर्तव्य ! आदरपूर्वक यहीं लिवा लाओ। (चर का प्रस्थान) कल्पनाकाश की सर्वोच्च उड़ान लेने वाले स्वतन्त्र विहंग को भी कर्तव्य-वश पृथ्वी की भयंकर ज्वालाओं में लौटना पड़ता ही है।

सेनानायक—(प्रवेश करके) कुमार आदित्य की जय हो ! विजय हो !

आदित्य—कुमार आदित्य प्रणाम करता है वीरश्रेष्ठ !

(सिर झुकाकर प्रणाम करता है।)

सेनानायक—चिरजीवी हो ! यशस्वी हो पुत्र ! युद्ध की गति अविचलित है कुमार ! शत्रुओं के पैर उखड़ने में ही नहीं आते ! जान पड़ता है, कि इधर कुमार को युद्ध-चिन्तना का अवकाश

अधिक नहीं मिलता। सेना-निरीक्षण किये कई-कई दिन बीत जाते हैं।

आदित्य—लज्जित हूँ महानायक! किन्तु आदित्य अकर्तव्य-परायण नहीं। वृद्ध महानायक, भावनाओं के समूह से विचलित न हों। यह अपराधी बालक स्वभाववश अवश्य युद्ध-चिन्तना से कुछ विमुख सा हो रहा था, किन्तु कर्तव्य की शिक्षा जिसने गुरुजनों के चरणदेश में बैठकर पाई हो, वह कहाँ तक कर्तव्य से विमुख हो सकेगा?

सेनानायक—यही तो तुमसे आशा थी कुमार! समस्त उत्तरापथ स्कन्दगुप्त के संसार त्याग के पश्चात एक टक निरन्तर तुम्हारे ही अवतरित होने की बाट जोह रहा था। कुमार, तुमने राजभक्त गुप्तसाम्राज्य-सेवकों की हृदय-स्थित आशा-लतिका जीवित कर दी। अब क्या इस कठिन पथ से विचलित होकर हमारे जीवन की अन्तिम आशा भी छिन्न-भिन्न कर दोगे? बताओ कुमार, उत्तर दो, पुत्र!

आदित्य—क्षमा करें, महानायक! बालक से अवश्य कठिन अपराध बन पड़ा। महानायक, (दृढ़ता पूर्वक) कल सूर्य्य उदय होते ही संसार देखेगा, कि शत्रुओं को अब अधिक दिन तक सरस्वती के तट पर उद्दण्डता पूर्वक आर्य्य वैष्णवों पर अत्याचार करने का साहस नहीं होगा। महानायक, आर्य समुद्रगुप्त की सन्तान अपना प्रमाद स्वयं शीघ्र ही नष्ट कर डालेगी, इसमें आपको कुछ भी सन्देह न हो सकेगा।

महानायक—विश्वविजयी हो कुमार! चक्रवर्ती सम्राट हो! अश्वमेध के अधिकारी बनो! यही तो सच्चे गुप्तवंशधर के वास्तविक शब्द हैं।

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

[नगर से बाहर एक पर्णकुटी में]

कोण—(गाती है)।

किरणों की माला में गूँथा, विश्व-स्वप्न सुख सारा।
विश्व-भार सह कर भी खोजा, एक विश्व मैंने न्यारा॥
इसी निराले मेरे जग में, प्रलय-अग्नि कर दे जो निष्ठुर।
उस पर बलि बलि जाऊँगी मैं, अपना जग मैं हारा॥

मधुमयी—विचित्र नारी हो, कोण! नारी के शरीर में यह असंगत सम्मिश्रण क्यों? सिप्रा के तट पर लोहे का बजना तो मैंने नहीं देखा, किन्तु, जो दृश्य सरस्वती के तट पर देख चुकी हूँ, उसे क्या यावज्जीवन किसी भी सुख या दुःखपूर्ण चण में विस्मृति-गर्त में गिरा सकूँगी?

कोण—देवी! स्वजनों की प्रशंसा केवलमात्र हृदय के अगाध प्रेम की ही द्योतक होती है। आप व्यर्थ ही प्रशंसा कर इस बालिका को अधिकाधिक गौरवान्वित कर रही हैं।

मधुमयी—नहीं, नहीं, यह अतिशयोक्ति नहीं। विचित्र वीर-वेश में मानों साक्षात् कार्तिकेय ही अवतरित हो गये हों। तुम्हारे वीर मुखमंडल पर तेज-सौन्दर्य, मुझे तो मानो नारी की एक नवीन और सर्वोज्ज्वल छवि दिखा गया। कैसे सुन्दर थे, वह रत-नारे विशाल नेत्र! कुमार तुम्हारे बाण द्वारा प्रणाम का चरणों पर स्पर्श पाकर कैसे आश्चर्यान्वित हो गये थे। उन्हें क्या ज्ञात था, कि सृष्टि के अज्ञात कोने में छिपी हुई एक अज्ञात बाला उनकी अज्ञात शिष्या है।

कोण—यदि वह जान पाते; देवी! कि यह मौन शिष्या ही कदाचित सृष्टिभर में उनकी सबसे अधिक भक्त शिष्या है।

मधुमयी—फिर युद्धारम्भ होने पर जो स्वर्गीय दृश्य देखा वह तो अनुपम ही था। इन कोमल हाथों से परित्यक्त बाणों ने मानों क्रोधित हो अनेक नरपुंगवों का इस लोक में पथ नष्ट कर डाला। महानायक स्वयं उस स्वर्गीय दृश्य से आकर्षित हो, एक क्षण को स्तब्ध रह गये थे। युद्ध समाप्त होने पर उस अनुपम वीर की खोज ता स्वयं कुमार भी कर रहे थे, किन्तु उस अतुल बल-शालिनी नारी की यह कैसी दुर्बलता?

कोण—देवी, इस दुर्बलता से कैसे छुटकारा मिल सकेगा? मैं स्वयं दो प्रकार के चरित्र लेकर दुःख का ग्रास बन रही हूँ।

मधुमयी—यही तो मैं भी सोचती हूँ कहाँ असिधारिणी, कठोर वीरांगना और कहाँ कुसुम-कोमल मृदु-भाषिणी प्रेमिका बाला? यह कैसा विचित्र सम्मिश्रण है?

कोण—देवी, मैं स्वयं अपने प्रति विश्वासघात करती हूँ। युद्धक्षेत्र में अपने इष्टदेव के चरणचिह्नों पर चल सकने का यत्न करने में तलवार चलानी ही पड़ती है। आप कहती हैं, वह वीरता है, अनुपम शौर्य्य है, किन्तु देवी, यह पराक्रम, यह वीरता बड़ी महँगी है। रक्त का प्रत्येक बिन्दु इस नारी को चिल्ला चिल्ला कर मानो यह कहता हुआ जान पड़ता है कि मानवी-सृष्टि का संहार तुम्हारा सर्वनाश कर देगा।

मधुमयी—ऐसा क्यों कोण? वीरता तो वरदान है कुछ अभिशाप नहीं। वीरता के विरुद्ध वीरहृदय युद्ध नहीं करता।

कोण—नहीं, देवी सो बात नहीं। पृथ्वी पर गिरा हुआ प्रत्येक रक्तबिन्दु इस नारी को उन अभागी नारियों के लुप्त सौभाग्य का स्मरण कराता है जो कदाचित उस समय भी देवी के मन्दिर में एकान्त व्रत-धारिणी हो, स्वजन की मंगल-कामना में रत होंगी।

मधुमयी—यही तो सृष्टि का नियम है, कोण! इसमें उलट-

फेर कर सकना मानवी शक्ति से परे की वस्तु है। इस नियम को अनादि काल से मनुष्य सिर झुका कर स्वीकार ही करता आया है। वैसा ही तुम्हें भी करना पड़ेगा।

कोण—सो बात नहीं है देवी! मुझे बड़ा कष्ट होता है। मेरे इस कष्ट को कौन समझ सकेगा? शरीर युद्ध करता है। किन्तु दुर्बल नारी समस्त हृदय को मथ कर आती हुई मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव करती है। मैं रक्तपात से घृणा करती हूँ। नहीं, नहीं यह भी कैसे कहूँ? दीन-हीन, दुर्बल और असहायों की रक्षा में रत, उन्हें तो निशि-वासर यही करना पड़ता है। फिर इससे घृणा कैसी? ना, ना, ऐसा नहीं हो सकेगा। किन्तु करूँ भी क्या? देवी, मुझे वही करना पड़ता है जो मेरी इच्छा के सम्पूर्ण-रूप से विरुद्ध है। देवी, यह अन्तर्द्वन्द्व मुझे समूचा ही निगल जायेगा।

मधुमयी—शान्त हो कोण! देवता के मन्दिर में अर्पित नैवेद्य कभी भी अपावन नहीं होता, दुःखहेतु भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। इष्टदेव के मन्दिर में स्वयं को अर्पित कर उनके चरण-चिह्नों को गुरुमार्ग, ऋषिमार्ग समझ कर अनुसरण करने वाली नारी! तेरा ऐसा ही करने में कल्याण है।

कोण—किन्तु देवी, मेरे हृदय से उठता हुआ शब्द, मेरी उत्कट अभिलाषा, मेरे हृदय की भीषण ज्वाला, उन सब का फिर क्या होगा?

मधुमयी—नारी का गौरव अपने स्वत्व की पृथक स्थापना में नहीं, वरन अपने अस्तित्व को एकबारगी आराध्यदेव के अस्तित्व में खो देने में ही है। इस तरह खोकर ही उसे नारीत्व से देवीत्व की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार स्वयं को खोकर वह प्रिय को स्वयं में प्राप्त करती है। कोण, नारीधर्म का तुम सर्वश्रेष्ठ उदाहरण

हो, फिर यह व्याकुलता क्यों ? बुद्ध भगवान की कृपा से तुम अपने कर्मों द्वारा प्रिय की प्राप्ति करो, यही आशीर्वाद देती हूँ।

कोण—देवी, यत्न करूँगी। आपका आशीर्वाद सर्वथा ग्राह्य है।

(पट-परिवर्तन)

—:o:—

पञ्चम दृश्य

[शिविर का विश्रामगृह। पलँग आदि से सजा हुआ प्रकोष्ठ]

आदित्य—मानवीय दुर्बलता-जनित अकर्मण्यता की बेला व्यतीत हो चुकी थी। हृदय की सुकोमल भावनाओं को क्षात्रधर्मा-च्छादित हृदयकुण्ड की कर्तव्याग्नि में कभी का भस्म कर चुका हूँ, किन्तु फिर भी ज्ञात होता है कि इसमें कुछ त्रुटि रह गई है। विधाता ने विधान की सृष्टि करते हुए, कहाँ कौन सी त्रुटि रख छोड़ी है, यह इच्छा करने पर भी बिन्दु-तुल्य दीन हीन मानव कैसे जान पायेगा ? इसकी तो व्याख्या ही व्यर्थ है ! कब किस अस्थिर क्षण में इस दुर्बल प्राणी की सृष्टि हुई थी ? हृदय के भीतर एक बवंडर सा उठता जान पड़ता है। मानो कोई आकर चुपके से कान में कुछ कहने लगता है और सर्वाङ्गपूर्ण शरीर सम्पूर्णरूप से कान बन कर उसे ही सुनने लगते हैं। वह तो मानो एक सुदूर—अतीत में बहता हुआ मीठा स्मृतिगान है ; उसमें झंकार तो है, किन्तु गति नहीं, मृदुता तो है, किन्तु व्याकुलता नहीं, सौन्दर्य तो है, किन्तु मादकता नहीं। मानो वह शीतल स्वच्छ सुगन्धित जल हो, किन्तु उसमें आसव की सी मादक तीव्रता नहीं। मुझे शक्ति की, नरमुण्ड-माल-धारिणी भैरवी की, नरकपाल-सेवित तीव्रातितीव्र पागल कर डालने वाली मदिरा की आवश्यकता है। शीतल जल की नहीं। तब फिर शीतल की ओर

आकर्षण ही क्यों ? प्रवृत्ति ही क्यों ? हृदय की सर्वश्रेष्ठ कुसुमादपि मृदुल भावनाओं का गला घोंट कर ही, पुण्य की प्राप्ति करना क्या आदर्श है ? यही क्या क्षात्रधर्म है ? मैं समस्त हृदय से अनजाने में ही मानो किसी के चरणों पर सर्वस्व उँडेल देना चाहता हूँ, किन्तु मधुमय "किसी" का मान, कदाचित् जीवन के उस पार पहुँच कर भी न कर सकूँगा, यही तो व्यथा है। इस व्यथा से क्योंकर पार पा सकूँगा ? युद्ध का अन्त निकट है। नहीं जानता, कल क्या होगा। किन्तु, यदि जानने का कोई उपाय होता भी तो समस्त पुण्यफल देकर भी यही इच्छा करता कि इस अपूर्ण, अपंग व्यक्ति को यदि वराह भगवान जीवित रखना ही चाहें तो उसे मानवमात्र के कल्याण के लिये सर्वस्व अर्पण कर सकने की शक्ति भी मुक्तहस्त होकर प्रदान करें। प्रभो, इस जीवन की त्रुटि को, भूल को, संशोधित करने के लिये, उस "किसी" की खोज में मानवजाति के कल्याण के लिये स्वयं को अर्पित कर सकूँ अथवा समस्त मानव जाति को उस इष्टदेव के रूप में प्राप्त करके बन्धन में जोड़ने का यत्न करूँ।

रामभद्र—(प्रवेश करके) कुमार, सूर्योज्ज्वल तेजस्वी मुख को सदैव ही ताकता हुआ, यह वृद्ध आज तक अपने जीवन के अनेक व्यर्थ, दुःखी और निराश वर्ष काट गया। कुमार का युद्धक्षेत्र में कार्तिकेय के समान तेज भी देखा और एकान्त में अबला के समान दुर्बलता भी। इनमें से क्या सत्य है, और क्या मिथ्या इसकी मीमांसा आज तक भी न कर पाया। कुमार, यह दुर्बलता स्वाभाविक नहीं है। संसार का कोई भी नारीरत्न आपको पाकर धन्य हो जायेगा, किन्तु कुमार, जो इस सूर्य के तेज को सुन्दर आँचल से ढक कर रखना चाहे, उस रमणी के प्रति तो कुमार आकर्षित नहीं हो सकेंगे।

आदित्य—नहीं, नहीं रामभद्र मैंने कभी किसी रमणी को प्रेम नहीं किया। जीवन में यदि किसी व्यक्ति को सम्पूर्णरूप से, हृदय

से प्रेम कर सका हूँ, तो वह एकमात्र वह व्यक्ति था, जिससे मैं अब हृदयतल से घृणा करता हूँ। रामभट्ट, वह व्यक्ति तुमने देखा है, तुम उसे प्यार करते हो। उसे सब ही प्रेम करते हैं। और वह प्रेम करने योग्य भी है। दादा, वह है कोणदेव। मैंने माँ को प्रेम किया, किन्तु भक्ति नहीं की। पिता को इन दोनों में से कुछ भी अर्पित न कर सका......

रामभट्ट—(बीच ही में काटकर) युवराज, कोणदेव, आपका सखा था सही, किन्तु इतना प्रेम आपके हृदय में उसके प्रति भरा हुआ है, सो हम न जानते थे।

आदित्य—इससे भी कहीं अधिक। दादा! देवप्रिया मेरी गुरु है। उसकी मैंने भक्ति तो अवश्य की, किन्तु प्रेम नहीं किया। किन्तु कोणदेव, ओह! वह तो मेरी भक्ति और प्रेम दोनों का ही एकान्तपात्र था। उसने विश्वासघात किया और विश्वासघात के तुल्य अन्य कोई अपराध नहीं।

रामभट्ट—कुमार, भूलों को लेकर ही मानव-जगत की सृष्टि हुई है। भूल न होने से ही कदाचित विश्व अतीत को अतीत के ही अन्धगर्त में सदैव के लिये डुबा देता। यही तो भीषण अन्याय होता। मानव की अनेकों भूलों ने इस अन्याय से उसका छुटकारा करवा दिया। कुमार, भूलों का आदर करिये, उनसे घृणा नहीं। यही तो वास्तविकता है। निष्कपट सत्य है।

आदित्य—यही तो मैं भी कहता हूँ, दादा! वह घृणा का पात्र ही नहीं। वह तो प्रेम, चिर-जीवित, चिर-नूतन, चिर-सत्य प्रेम का अधिकारी है। अवश्य कहीं कोई भूल हो रही है, दादा! मैं उसे समझ नहीं पा रहा हूँ। तीव्र यन्त्रणा है। मैं उससे बात भी नहीं कर पाया। क्रोध ने मुझे बावला बना कर चिर-दुःख की ओर ढकेल दिया।

रामभट्ट—अधीर न हो, कुमार! वीर अधीर नहीं हुआ करते। बहुत दिनों से गुप्त-लक्ष्मी की गौरव-गाथा, उसके यश की कहानी सुनाता आ रहा हूँ। कुमार, आज इस विरह-व्यथा में एक प्रेम-गीत सुनिये।

आदित्य—सुनाओ, दादा! बचपन से ही जो कुछ तुमने सुनाया, वही सुन कर तो भाषा सीख सका हूँ, भावनाओं की सृष्टि कर सका हूँ।

रामभट्ट—

भ्रमर क्यों जीवन तू धरता है?

कमल-प शतमुखी पवन से,
क्रीड़ा जब करता है।
क्या न द्वेष तव भग्न-हृदय कर,
कटुता ही भरता है?
करुण-कृपा कर पंकज निजमुख,
हास्य - छटा भरता है।
क्यों तेरा तब भग्न हृदय भी,
नाच नाच उठता है॥
भ्रमर क्यों जीवन तू धरता है॥

(पट-परिवर्तन)

पञ्चम अङ्क

प्रथम दृश्य

[घास-पात की साधारण कुटी के बाहर हरी हरी घास पर दो युवतियाँ बैठी हैं। कोणदेवी पुरुष-सैनिक के वेश में है और मधुमयी साधारण सन्यासिनी के वेश में]

कोण—कहती क्या हो बहिन! मुझे देश लौटना पड़ेगा और वह भी कुमार को ऐसी भयंकर स्थिति में छोड़ कर? यह तो मुझसे किसी प्रकार भी न हो सकेगा।

मधुमयी—ठीक ही कहती हूँ, बहिन! ज्योतिष-विद्या में अपने अतिरिक्त आचार्य बुद्धगुप्त को छोड़ कर और तो समस्त उत्तरापथ में किसी को मैं प्रमाण नहीं मान सकती। गणना का फल स्पष्ट ही है। तुम्हें शीघ्र ही राजधानी लौट जाना पड़ेगा। बुद्धगुप्त से बढ़ कर कुमार का और कोई भी शत्रु नहीं है। शीघ्र ही बुद्धगुप्त की अकाल-मृत्यु होगी, सम्भवतः राजदण्ड द्वारा। कुमार सम्राट होकर तुम्हें ग्रहण न करें, ऐसा गणना के अनुसार सर्वथा असम्भव है। तुम्हें राजधानी में जाकर गुप्त-साम्राज्य की मर्यादा की रक्षा करनी ही होगी। किस प्रकार? सो मैं न बता सकूँगी। तुम्हें पट्ट-महादेवी भी शीघ्र ही बनना होगा। कुमार के भविष्य का विचार त्याग कर लौटने की तैयारी करो। मधुमयी की गणना असत्य नहीं होती।

कोण—ऐसी आज्ञा तो न दो, देवी! कुमार घोर विपत्ति में पड़े हुए हैं। इस सुदूर बन्धु-बान्धव-हीन देश में उनकी रक्षा कर सके, ऐसा कोई भी तो दृष्टिगोचर नहीं होता।

मधुमयी—उनकी रक्षा स्वयं मधुसूदन करेंगे, कोण ! कुमार को कल प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही विजयलक्ष्मी की प्राप्ति होगी। आज रात्रि के दो दण्ड बीतते ही महाराज की अचानक मृत्यु हो जायेगी। कुमार कल सन्ध्या समय तक समाचार भी न जान सकेंगे। प्रस्थान शीघ्र ही कर देंगे, किन्तु राजधानी पहुँचने में विलम्ब होगा। गणना में संशय न करो। इसी समय अश्व-पृष्ठ-स्थित हो राजधानी की ओर प्रस्थान करो। कल सन्ध्या समय तक, रात्रि के पूर्व तुम्हारा वहाँ होना अत्यन्त आवश्यक है। तुम अधिक विलम्ब न करो।

कोण—किन्तु, देवी ! आप तब यहाँ क्या करेंगी ? आप भी मेरे साथ ही राजधानी लौट चलें। अकेली आप जानती ही हैं, कि मैं कुछ भी न कर सकूँगी।

मधुमयी—कोण, सुख के भले दिनों में भी यह न भूल जाना कि भाग्य प्रत्येक व्यक्ति के लिये होता है, समष्टि या समूह के लिये नहीं। किन्तु अपने भाग्य में दूसरे को साझा दे सकना, व्यक्ति की शक्ति से बाहर की बात है।

कोण—देवी ! आपकी पहेली सुनकर भय प्रतीत होता है। आप का आशय क्या है !

मधुमयी—कोण, सुख के दिनों में, यौवन के प्रथम उन्मत्त उद्यान में, जिसे सर्वस्व देकर भी क्रय कर लेने की इच्छा उद्दीप्त थी, आज जीवन की एकाकी, शून्य सन्ध्या में उसे कैसे भूल सकूँगी ? संसार के कृत्रिम बन्धनों की सृष्टि आज दिन तक दो अकृत्रिम प्रेम-लिप्त आत्माओं को पृथक करने का ही यत्न करती रही, किन्तु आज रात्रि के दो पहर बीतते-बीतते वह अतृप्त आत्माएँ मिलन-सन्ध्या की तृप्ति का आनन्द सम्पूर्ण हृदय से अनुभव करेंगी।

कोण—देवी, पहेलियाँ न बुझाइये। इतनी अचानक कही हुई भविष्य घटनाओं की सूचना अत्यन्त कठोर है। इसका भार मैं न सँभाल सकूँगी।

मधुमयी—सुनो, कोण, सुनो! फिर कभी भी सुनने का अवसर न मिल सकेगा। आज जीवन-मध्याह्न की यात्रा से थकी हुई, विश्राम-प्रार्थिनी, शान्ति की इच्छा से जीवन-सागर पर यौवन-सन्ध्या के तट पर खड़ी होकर असत्य न कह सकूँगी। हो सके तो विश्वास करना। यही चिर-सत्य है, कि नारी, अनेक कृत्रिम बन्धनों की सृष्टि, अपने चारों ओर चाहे तो कर ले, किन्तु उन सब से परे उसके भीतरवाला नारी-हृदय उतना ही स्वच्छ, उतना ही सरल रहेगा, जैसा कि एक बन्धन-हीन हृदय हो सकता है। यही नारी का सच्चा परिचय है। हो सके, तो संसार को समझा देना कि नारी भी प्रेम, पवित्रता और पूजा की वस्तु है, कुछ पुरुषों का खिलवाड़ नहीं।

कोण—देवी, तब क्या प्रियतम से मिलने के लिये आपको साजन की नगरिया में ही जाना पड़ेगा? ऐसा क्या उचित होगा, देवी?

मधुमयी—छीः! छीः! कोण! अभी तक अपनी दीदी को पहचान न सकीं? कोण, सब कुछ होते हुए भी मैं बौद्ध हूँ। बौद्ध नारी समय पड़ने पर आपद्काल में देश के कल्याण के लिये नर-हत्या चाहे कर ले, किन्तु कभी और किसी भी अर्थ में स्वयं अपनी हत्या न कर सकेगी। मनुष्य का सच्चा परिचय प्राप्त करने का यत्न करो, कोण! भ्रम का तो कहीं भी अन्त न होगा।

कोण—क्षमा करें, दीदी! आपको तो यह अभागी आपकी बहिन कभी भी न पहचान सकेगी। इसके अपराधों का कदाचित सबसे बड़ा दण्ड यही है।

मधुमयी—अच्छा, विश्राम करो, कोण! मेरी मिलन की

वेला क्षण-क्षण निकट आ रही है। अन्तिम मिलन के समय तुम्हें भी सच्चे हृदय से आशीर्वाद देती हूँ कि तुम भी मुझ सी ही सौभाग्य-शाली हो सको। यही मेरा सर्वोत्तम आशीर्वाद है।

कोण—(रोकर) देवी, आप मुझे इस निर्मलता से त्याग कर किसी प्रकार भी न जा सकेंगी। आपको छोड़ कर अन्य कौन है, जो मुझे आश्रय दे सके ? बहिन, ऐसा करना क्या आपको उचित है !

मधुमयी—व्याकुल न हो, कोण ! हर्षित हो। कुमार सरीखे स्वामी को पाकर भी नारी किसी अन्य की अभिलाषा करे, यह असम्भव है। प्रसन्न होकर भाग्य का स्वागत करो। सौभाग्यवती, पति की प्रिया हो।

कोण—(साष्टांग प्रणाम करती है।)

(पट-परिवर्तन)

—:❀:—

दूसरा दृश्य

[राजप्रकोष्ठ, मन्त्रणागृह, भवन के द्वार पर महाप्रतिहार अन्य सैनिक तथा रक्षकों सहित। भवन के चारों ओर मूक तथा बधिर सैनिकों का दल बँटा हुआ है। महाप्रतिहार स्वयं देख भाल कर रहे हैं]

(गुप्तचर का प्रवेश)

देवप्रिया—शीघ्र कहो, क्या समाचार है ?

गुप्तचर—अत्यन्त दुःखजनक ! क्या सन्ध्या तक कुमार का कोई भी समाचार प्राप्त नहीं कर सके ? महाराज की मृत्यु का समाचार अत्यन्त गोपनीय होने पर भी प्रकाशित हो चुका है। बौद्ध धर्म की संरक्षक, वर्धनवंश की सेनाएँ सीमाप्रान्त तक पहुँच

चुकी हैं। अधिक काल तक सिंहासन कुमार के नाम पर सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। प्रजा अत्यन्त क्रोध और क्षोभ से राज्य-प्रबन्ध की ओर देख रही है। बौद्ध प्रचारक भाँति-भाँति की दन्त-कथाएँ सुना रहे हैं। प्रजा या तो कुमार को सिंहासन पर शीघ्र ही देखना चाहती है, अथवा अन्य किसी भी शासक को। अराजक-राज्य की व्यवस्था प्रजा की ओर से निन्दा की पात्र बन रही है।

विष्णुशर्मा—(देर तक सोच कर) प्रजा को अधीर होने की आवश्यकता नहीं। (गुप्तचर की ओर देखकर) विजयवाणी, तुम जा सकते हो। बौद्ध-विहार पर विशेष रूप से दृष्टि रखना। मद्यशालाओं पर भी गुप्तचर नियत कर दो। इस समय समाचार संग्रह करने पर ही राज्य का भविष्य निर्भर है। प्रजा की प्रवृत्ति समय-समय पर हमें ज्ञात होनी चाहिये।

गुप्तचर—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

विष्णुशर्मा—कुमार के आने में विलम्ब होने पर भी हम प्रजा को साम्राज्ञी से वञ्चित न रक्खेंगे। पट्ट-महादेवी राजदण्ड अपने कोमल करों में धारण कर प्रजा को शान्त करेंगी।

महादेवी—ना, ना, ऐसा कैसे हो सकेगा ? (अधीर होकर) पति-पुत्र-सहित जो सिंहासन मेरा सर्वदा स्वागत करता रहा है, आज यह पति-विहीना पुत्र के स्थान पर अनधिकार-चेष्टा कर उसी आसन द्वारा अपना अधिक उपहास न करवा सकेगी। कैसी विडम्बना है विधि की ! तुम कैसे भूल जाते हो, कि मैं नारी हूँ, दुर्बल नारी, फिर भी यह निष्ठुर प्रस्ताव ?

कैरवगुप्त—महामन्त्री जी दुःखिनी महादेवी पर यह भार डालना न तो उचित ही होगा और न सह्य ही। यदि आज इस भार को वहन कर गुप्तसाम्राज्य राजलक्ष्मी की त्रिभुवन में कोई

रक्षा कर सकता है तो वह एकमात्र नारी, देवप्रिया ही हैं। दूसरे साम्राज्य की कुलवधू होने पर भी यह गुप्तवंश की पुत्री है। कठोर राजदण्ड को इन्हें छोड़ कर और धारण कर सके ऐसा तो कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।

विष्णुशर्मा—साधु! साधु! बेटी, यह वृद्धावस्था, तिस पर प्रिय मित्र की मृत्यु का वियोग, यह सब जीर्ण मस्तिष्क को एकदम ज्ञान शून्य ही कर देता है। दाक्षिणात्यअधीश्वरी गुप्तलक्ष्मी, पितृकुल की लक्ष्मी की रक्षा करो।

देवप्रिया—पिता, गुरुजनों के सम्मुख बोलने की चपलता क्षमा करें। देवप्रिया, अपने शिव-तुल्य स्वामी के विशाल राज्य को त्याग कर गुप्तवैभव का कौतुक देखने आई हो, सो बात नहीं है।

विष्णुशर्मा—ना, ना, सो बात कदापि नहीं है।

देवप्रिया—साम्राज्य का पतन देखने आई थी। देखा, और भली प्रकार देखा। आज दिन भी वह इस गुप्त-सूर्य्य को विपत्ति-तिमिराच्छादित त्याग कर जाने का यत्न नहीं करेगी। ज्ञान, बुद्धि, शौर्य्य, वीर्य्य, साम, दाम, दण्ड, भेद से किसी प्रकार भी हो, इस तिमिर को छिन्न भिन्न किये बिना उसकी गति नहीं, किन्तु इस लिये राजदण्ड धारण करे इतना बड़ा अत्याचार वह इस दुर्दिन में भी अपने ऊपर न कर सकेगी।

कैरवगुप्त—तब गुप्तसाम्राज्य की रक्षा कैसे सम्भव है? कुमार के हेतु सिंहासन की रक्षा सम्भव नहीं। और फिर कुमार आयेंगे हो, ऐसा भी तो निश्चित नहीं।

श्रीमती देवी—आह! क्या कहते हो? (रोती है।)

देवप्रिया—वृद्ध महानायक, मेरे वर्षों के विश्वास को धो सके, ऐसा जल भारत-खंड में नहीं मिलेगा। आप भी विश्वास करिये कि

समस्त वसुधा में कुमार आदित्य को तनिक भी कष्ट पहुँचा सकने वाला वीर अभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है। भूल न जाइये, गुप्त-साम्राज्य की नींव धर्म पर स्थित है, कुछ बालिकाओं के राजदण्ड धारण करने पर नहीं। राज्य की रक्षा होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, किन्तु प्रजा के इच्छा मात्र पर ही सम्राट-निर्माण का खेल रचा जा सके, इसकी कोई व्यवस्था नहीं है।

कैरवगुप्त—अपराध क्षमा हो, देवी! देश में सेना नहीं है। समस्त-वीर-वृन्द सरस्वती के तट पर पड़े हैं। इधर वर्धन-वंश की बड़ी सेना से अन्य किस प्रकार रक्षा सम्भव है, यदि प्रजा को प्रसन्न न किया जाये।

देवप्रिया—भूल न जायें महानायक! महाराज का शव जब गंगा द्वार तक ही पहुँचा था, कुछ उपद्रवी बौद्ध व्यक्तियों ने सशस्त्र आक्रमण करने की व्यवस्था की थी। उस समय भी आपके सैनिक उपस्थित ही थे। तभी एक वीर, सूर्य्यसम तेजस्वी सैनिक, अनेकों बाल-सूर्य्य-सम वीरों सहित दुर्दिन के विपत्ति आकाश में उदय हुआ था। वह तेज वर्णन करने की वस्तु नहीं है। स्मरण करिये वह तेज, ऐसा तेज कहीं देखा था? बुद्धगुप्त के विषाक्त अस्त्र से घायल होकर जब वह गंगाद्वार के निकट ही वक्षस्थल पर भारी आघात पाकर गिरा था, तब मानो नीलाकाश हर्षित हो, उस पर शान्ति-सिक्त वारि की अतुलित वर्षा कर रहा था। घनी-भूत हृदय मानो उसके चरण चुम्बन करने को व्याकुल हो उठा था। उत्कर्ष वीरता, आत्म-समर्पण और निर्ममता का ऐसा उदाहरण और कहाँ मिलेगा?

कैरवगुप्त—आप सत्य कहती हैं, देवी! वह तेज अनुपम था।

देवप्रिया—फिर वृद्ध सम्राट के शव पर भी कृपा न करनेवाले दुष्टों की इच्छाएँ केवल भस्मावशेष रह गईं, किन्तु सुन कर आश्चर्य होगा, महानायक! वृद्ध पिता के साथ चिता द्वार तक

यात्रा करने का विचार छोड़ कर जब मैं उस अपरिचित बालक के पास पहुँची तो वह मृत्यु के द्वार के विशेष निकट खड़ा, स्वयं यमराज के साथ अठखेलियाँ कर रहा था। मैं आश्चर्य्य-चकित हो उठी यह देखकर, कि वह तेज-पुञ्ज बालक सूर्य्य न होकर मूर्तिमती उषा थी। विश्वास कर सकेंगे? महा-मन्त्री जी!

विष्णुशर्मा—आश्चर्य्य! वह स्त्री थी? क्या यह सम्भव है?

कैरवगुप्त—देवी, ऐसा तेज स्त्री में एकत्रित हो सकना सम्भव नहीं है।

श्रीमतीदेवी—सत्य ही वह बालक एक कोमल, उषा सी अरुण, कुसुम सी कोमल, हृदय सी मृदु और हवि सी पवित्र नारी थी। विश्वास करोगे, महानायक? मैंने शान्तिपूर्ण निश्वास ली। महामन्त्री जी, गुप्त-साम्राज्य नष्टप्राय नहीं है। आर्य्य समुद्रगुप्त की परिणीता राजलक्ष्मी शीघ्र ही मृत्यु को वरण न कर सकेगी। जिस देश की नारियाँ सुकुमार शरीर में अतीव साहसी, निर्भय और तेजस्वी हृदय धारण करती हैं, उसकी रक्षा के लिये एक दुर्बल नारी को अनधिकार-चेष्टा करवा कर राज-सिंहासन पर बिठा प्रजा के साथ छल करने की कुछ वैसी आव-श्यकता नहीं है।

कैरवगुप्त—किन्तु देवी, क्या इस प्रकार तेज-पुञ्ज नारियाँ भी वर्धन से आने वाली सेनाओं का सामना कर सकेंगी?

देवप्रिया—आने दो, वर्धन से सेनाएँ। देश की प्रत्येक रमणी समय आने पर सुकोमल, सुरुचिर, सुवर्ण कटिबन्ध के साथ किसी समय भी लौह-अस्त्र लटकाने में आगा पीछा न करेगी। आप निश्चिन्त हों। महानायक, देश की रक्षा स्वयं वराह भगवान करेंगे। देश उपासना की वस्तु तो है, महानायक, किन्तु उपास्य जीवों से, कुछ प्रस्तर खण्ड से नहीं। कुमार आदित्य

अपनी धरोहर को शीघ्र ही सँभाल सकें, ऐसा प्रबन्ध करिये। जिस दिन ऐसा हो जायेगा उस दिन सूर्य्यदेव सर्व प्रथम देवप्रिया को ही कुमार के शुभ्र-ललाट पर स्वस्तिजल अर्पित करते देखेंगे।

विष्णुगुप्त—धन्य! धन्य! प्रभु! युग युग तक भारत को ऐसी निर्भय निस्वार्थ स्वदेशभक्त नारियाँ प्रदान करना! विस्मरण न कर देना! मातृशक्ति की जागृति न होने पर तैलविहीन पुरुष-साहस दीप अधिक देर तक प्रज्वलित रह सकेगा, यह कौन कह सकता है!

कैरवगुप्त—देवी; आपकी उपस्थिति में गुप्तलक्ष्मी विचलित हो सके ऐसी कल्पना करना अन्याय है, असत्य है और पाप है।

श्रीमतीदेवी—(कुछ चौंक कर) यह सब कुछ क्या हुआ प्रिया? यह सब क्या कहते हैं? आदित्य कब आ रहा है? बताओ तो सही।

(पट-परिवर्तन)

—:❀:—

तीसरा दृश्य

कोण—भाग्य, मनुष्यमात्र को चित्र विचित्र गुटके बनाकर एक अलौकिक कौतुक रचा करता है। मधु बहिन की गणना ठीक हुई, किन्तु कौन कह सकता है, कि भविष्य में भी भाग्यदेव दुर्भाग्य चिता के तट पर बैठ कर इस दीन मानवी का सर्वस्व स्वाहा कर, उपहास करने में पग पीछे न धरेंगे! मानव-शव-सज्जित रक्त-अस्थि-मज्जा-परिपूर्ण तट से विजय रमणी को वरण कर कार्ति-केय-सम तेजपुञ्ज उस रमणी-रत्न को हृदय पर धारण कर, जब आदर सत्कार हर्ष और विजयानन्द के भोग के हित इस पृथ्वी

पर पग धरेंगे, तो कौन कह सकता है कि इस उनकी घृणापात्री रमणी की ओर एक दृष्टि डालने का उन्हें अवसर भी प्राप्त हो सकेगा ? नहीं, नहीं, मधु बहिन कहती थीं, नारी को यह अभिलाषा ही क्यों हो ? मन्दिर स्थित प्रस्तरमूर्ति के कृपा-कटाक्ष की सम्भावना न होने पर भी भक्त विचलित नहीं होता। फिर यह कृपा-कटाक्ष की आकांक्षा ही क्यों ?

देवप्रिया—किसके कृपा-कटाक्ष की दत्त-चित्त से एकान्त में आकांक्षा पूर्ति के लिए साधना हो रही है ? रति-मिलन निकट ही दीख पड़ता है ? कुसुम-शर-धारी भी अब आने ही वाले होंगे।

कोण—देवी, लज्जित न करें। आपको तो हर समय अपने कुसुम-शर-धारी का ही ध्यान आता रहता है।

देवप्रिया—आता अवश्य है, लेकिन अपने नहीं, अपनी कोण के। और फिर कोण बहिन को भी तो एकान्तरूप से शिव-शत्रु, महादेव द्वारा दंडित, रति-पति मदन के अतिरिक्त और किसी का ध्यान ही नहीं आता।

कोण—और किसी का भी ध्यान आता है, देवी।

देवप्रिया—ओह, ऐसी बात है। तो वह दूसरा भाग्यवान कौन है ? मैं तो नहीं ना ?

कोण—आप तो देवी हैं। सर्वव्यापी देवी को मानवी अपनी दुर्बल उपासना, दीन ध्यान शक्ति में बाँध सके, ऐसी शृङ्खला तो उसके पास है ही नहीं। वह दूसरा भाग्यवान तो पुरुष-श्रेष्ठ···

देवप्रिया—हाँ, हाँ, कहो, कहो, वह कौन हैं ?

कोण—आप बूझिये तो सही, देखें।

(चंचलता पूर्वक मुस्कराती है।)

देवप्रिया—भई, हार गई, बताओ तो सही। सन्देह तो होता है।

कोणा—वह है साक्षात पुरुष यमराज, यमलोक का एकमात्र अधिपति।

देवप्रिया—(मुस्करा कर) प्रेमी तो अत्युत्तम है। मेरी ओर से बधाई स्वीकार करो। किन्तु उस विचारे का, यह अनुपम प्रणय-लीला सुन कर, क्या हाल होगा, यह भी भला सोचा है? वह जो अनेकों नदी, नद, पर्वत आदि से पूर्ण कण्टकाकीर्ण मार्ग किसी सुकोमल चन्द्रमुख के ध्यान में पार करता आ रहा है।

कोणा—कैसा तीव्र व्यंग है देवी?

देवप्रिया—नहीं, नहीं, बहिन व्यंग समझ कर व्याकुल न हो। तुम्हारी कथा सुनकर मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि भुवन-भास्कर आदित्य कोणा-उषा को त्याग कर अन्य किसी भी नारी रत्न को अपने पुरुष-हृदय पर धारण नहीं कर सकता। कोणा यह सत्य है कि मैंने आदित्य को गर्भ में धारण नहीं किया, किन्तु उसकी वास्तविक माँ महादेवी नहीं, मैं ही हूँ। मैं यदि उसे न जान सकूँगी तो किसे जान सकूँगी? दृढ़ निश्चय से कह सकती हूँ कि आदित्य के उपयुक्त रमणी यदि समस्त भारत-खण्ड में कोई हो सकती है, तो वह शक्तिसम तेजस्विनी, मूर्तिमती दयासम करुणामयी और साक्षात उषासम सौन्दर्य्यमयी कोणा ही है। इसमें अत्युक्ति को कहीं भी स्थान नहीं है। यही ध्रुव सत्य है।

कोणा—देवी, कब किस समय और किस विचार से क्या करती हैं यह कौन जान सकता है?

देवप्रिया—आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सम्पूर्णरूप से भाई और बहिन दोनों को जान सको।

(कोणा सिर झुका कर आशीर्वाद ग्रहण करती है।)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(राजपथ पर मधुमयी गाती हुई आती हैं ।)

मधुमयी—

देश की रजकण में खेलेंगे।

देशदेव की करूँ आरती,

देश धूलि हो चन्दन मेरी।
शत्रु की सैन्य सदा ठेलेंगे॥
देश की रजकण में खेलेंगे॥

मातृसेवा हो जीवन मेरा,

चरणचिह्न पर माँ के चलकर।
धन और यौवन भी खो देंगे॥
देश की रजकण में खेलेंगे॥

जल-कण-चुम्बित चरण सुपावन,

इष्टदेव हो सकें हमारे।
उन्हीं को क्षण क्षण में पूजेंगे॥
देश की रजकण में खेलेंगे॥

(एक स्त्री का प्रवेश)—देवी, बच्चे का स्वास्थ्य तो अब पूर्ण-रूप से ठीक है, किन्तु वह तो व्याकुलता-पूर्ण करुण कण्ठ से वारंबार आपको ही पुकार रहा है।

मधुमयी—चलिये।

स्त्री—देवी, आप सचमुच वन्दनीय हैं। यह निस्वार्थ सेवा, अकपट प्रेम और सौजन्य-बाहुल्यता और कहाँ मिलेगी देवी? यही तो आपको आकर्षण केन्द्र बना देती है।

मधुमयी—नहीं बहिन, मैं निःस्वार्थ नहीं हूँ। मैं रोगियों की सेवा करती हूँ, अपने सर्वप्रधान स्वार्थ की उपासना के लिये। मैं उन्हें स्वस्थ करना चाहती हूँ, मृत्यु के कराल मुख में झोंक देने के लिये।

स्त्री—हैं यह क्या!

मधुमयी—विचलित न हो बहिन, धैर्य्य धारण करो। यह नन्हें-नन्हें पौधे जिनके हम केवल उपकरणमात्र हैं, हमारे हित के लिये नहीं केवलमात्र देश और जाति द्वारा उत्पन्न और अन्त में मातृभूमि की रजकण में नष्ट हो जाने के लिये ही हैं। यम-राज अकाल में ही उन्हें देश पर बलिदान हो जाने के सुख से वञ्चित न कर दें, इसीलिये मेरी यह साधना यम के विरुद्ध युद्ध ठानने की होती है। अन्यथा मैं यह कुछ भी न कर पाती। यह स्वार्थ ही है, किन्तु हम सब का स्वार्थ, देश और जाति का स्वार्थ।

स्त्री—किन्तु, क्या हमारे ही बच्चे व्यर्थ हैं? हम क्यों उन्हें देश-भक्ति नामक कपोल-कल्पित भावना के आधार पर अकाल में ही झर जाने वाले कुसुम की भाँति विलीन हो जाने दें?

मधुमयी—बहिन! देश असत्य कैसे होगा। यदि देश असत्य या कपोल-कल्पित आकाश-कुसुम हो जायेगा तो सत्य कहने योग्य हमारे पास रह ही क्या जायेगा? चिर-सनातन, चिर-आदर्श और चिर-सत्य करने के योग्य एक यही तो वस्तु हमारे पास रह गई है। इसे नष्ट करके, खो देने के बाद, फिर शून्य की भाँति ही हो जायेंगे। भारतीय जनों की आवश्यकता पर, भारतखण्ड के कल्याण पर, नये सत्य की सृष्टि करना ही तो चिर-सत्य है। इस चिर-सत्य को सत्य मनवाने के लिये कोई भी अभिसन्धि हेय नहीं हो सकती।

स्त्री—देश ईंट पाथर तो नहीं है। देश तो मनुष्यों के समूह का ही नाम है। यदि देश की सन्तान अपना रक्त बहायेगी, तो

इससे देश का अकल्याण न होकर कल्याण भला किस प्रकार हो सकेगा?

मधुमयी—हाय रे अभागे देश! बहिन, यही तो मैं भी कहती हूँ, कि देश के अर्थ विस्तृत नदी तट नहीं, दिगन्त से दिगन्त तक विस्तृत मलयानिल नहीं, प्रशान्त कल्लोलित महासागर भी नहीं और गहन गम्भीर अन्धकार पूर्ण शीतल उपत्यका भी नहीं। देश का वास्तविक अर्थ है, "मानव।" मानव को विश्व की चिर-मुक्त मानवीय सीमा से कुछ घेर कर एक भूमि के घेरे में बाँध लेना ही तो देश है। अन्यथा उज्ज्वल नील, गम्भीर गगन का विस्तार कहाँ नहीं है बहिन? कैसे समझ सकोगी आज देश में प्राणीमात्र का भीषण संहार चल रहा है। इसकी समाप्ति निरुद्देश युद्ध से नहीं, भीषण रक्तपात से नहीं, वरन यदि कभी हो सकेगी तो केवल धर्मयुद्ध से ही। देश में भीषण अधर्म का साम्राज्य चल रहा है। अतः शीघ्र ही भगवान आप लोगों की ही कोख में जन्म धारण कर, अनेक मानवों के रूप में उत्पन्न हो, समस्त संसार का कष्ट क्षणमात्र में छिन्न-भिन्न कर डालेंगे। यह है चिर सत्य की साधना। यही है 'मानव' की देश-भक्ति। अन्यथा तो देश मृत्तिका खण्ड मात्र ही है।

स्त्री—देवी, आप कह क्या रही हैं? रक्तपात, एक मानव का दूसरे मानव को अस्त्र की सहायता से हत कर देना, उसके लाल लाल रक्त को देख भीषण हर्ष-चीत्कार करना ही क्या चरम सत्य है?

मधुमयी—चरम सत्य बंधनमुक्त है। किसी भी एक घेरे में उसे बरबस बाँधा नहीं जा सकता। मानवमात्र के सर्वोत्तम मानसिक एवं आध्यात्मिक कल्याण में ही चरम सत्य है। इसी लक्ष्य, इसी ध्येय पर खड़े होना ही चरम सत्य है। किन्तु, उस तक पहुँचने का साधन तो साधन मात्र ही है चरम सत्य नहीं। वह तो स्वर-साधन के लिये उपकरण तानपूरा मात्र है। इच्छा होने

से ही आप उसके स्थान पर वीणा, मृदङ्ग आदि कुछ भी ले सकेंगे। इसीलिये वह उपकरण चरम सत्य नहीं, उसकी साधना-मात्र ही है। मानव की रक्त पिपासा ही चरम-सत्य है, यह तो किसी प्रकार भी न कह सकूँगी, किन्तु मानव का स्थायी कल्याण ही चिर-सत्य है और धर्मयुद्ध उसका उपकरणमात्र, यह कहने में मुझे कहीं और कभी भी दूसरी बार सोचने की आवश्यकता न होगी। यही युग-युग की सत्य-कथा है।

स्त्री—ठीक कहती हैं देवी! मानवजाति का कल्याण ही चिर-सत्य है और धर्मयुद्ध, साधनों में से केवलमात्र एक तुच्छ साधन है किन्तु इस साधन की आराधना भी आवश्यक ही होती है। (प्रणाम करती है।)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

(गुप्त साम्राज्य का एक स्कन्धावार)

आदित्य—कैसे स्मरण किया कोणदेवी?

कोण—क्यों? उपासिका के लिये देवता की साधना भी क्या अपराध है, कुमार?

आदित्य—लज्जित न करो देवी! अनजाने ही आपको न समझ कर जो दोष लगाता रहा, उसके दोषी, इस अपराधी को क्षमा करो, देवी।

कोण—गुप्तसम्राट को क्षमा करने योग्य सामर्थ्य कहाँ से पाऊँगी कुमार?

आदित्य—क्यों लज्जित करती हैं देवी? एक दिन आपको सखा-रूप में हृदय से, हृदय की समस्त शुभ भावनाओं सहित प्रेम किया था। आपने मुक्त-हस्तिका हो उस दिन प्रेम प्रदान किया था। आज अनेकों दोषों से मुक्त होकर भी फिर आपके

उदार हृदय के समस्त प्रेम नहीं, केवल क्षमा का प्रार्थी हूँ। क्या वह दान न कर सकेंगी ?

कोण—कुमार, नारियाँ उन्मुक्त-हस्तिका हो प्रेम का दान तो कर सकती हैं, किन्तु क्षमा का दान उतना सरल भी नहीं और आनन्द-दायक भी नहीं।

देवप्रिया—(गाती हुई प्रवेश करती है)

मानवती राधा बन आई, कान्ह पलोटे पैयाँ।
युग युग जीवो राधा रानी सेवक कृष्ण कन्हैया ॥

कोण—बहिन आ रही हैं। मैं अब जाती हूँ।

आदित्य—नहीं, नहीं, वह इधर न आयेंगी।

देवप्रिया—किसका मान अधिक दृढ़ है यह निर्णय करने के लिये कदाचित मेरी भी आवश्यकता पड़ जाये।

कोण—देवी, आपके मंगल व्रत की साधना हो चुकी है क्या ?

देवप्रिया—नहीं, वह मंगल-व्रत तो आदित्य के अश्वमेध के साथ ही पूर्ण हो सकेगा। आदित्य-निर्मित विष्णु का मन्दिर भी तैय्यार ही है। माँ द्वारा निर्मित शिक्षालय भी लगभग पूर्ण ही हो चुका है। सेनानायक सालयक्ष सूर्य्यदेव की प्रतिमा की स्थापना करने को व्याकुल है। शीघ्र ही मेरा व्रत भी समाप्त होगा।

कोण—तब ही सम्भवतः सुदूर-विहारक दाक्षिणात्य अधिपति का व्रत भी पूर्ण हो सकेगा।

आदित्य—बहिन, सारे, झंझटों के बीच यदि बस एक एकान्तवासी चरणसेवक को विस्मृत कर दोगी तो अच्छा न होगा कहे देता हूँ।

देवप्रिया—चलो बहिन, आदित्य तो अकेला भी भले प्रकार समय व्यतीत कर सकता है। उधर महादेवी व्याकुल होती होंगी।

(देवप्रिया और कोण का प्रस्थान)

आदित्य—नारी के भिन्न-भिन्न रूप समझने की शक्ति किसमें है ? एक दृढ़ता तेज और वात्सल्य का विचित्र सम्मिश्रण है, तो दूसरी मूर्तिमती वीरता, शक्ति और प्रणय की प्रतिमा है। इच्छा होती है, कि युग युग तक इन्हीं स्नेह-मूर्तियों की स्नेह-प्रेरणा और आदर्श-कर्तव्य शिक्षा की छत्र-छाया में विश्रान्ति प्राप्त करता रहूँ।—कितना अपंग है पुरुष नारी के विना ?......कर्तव्य पूर्ण हुआ। लुटी हुई कीर्ति की रक्षा हुई, किन्तु जीवन तो अपूर्ण ही रह गया। घनघोर कालरात्रि के अन्धकार को चंद्र की उज्ज्वल ज्योत्स्ना छिन्न-भिन्न भले ही कर दे, किन्तु यामिनी की सज्जा अपूर्ण ही रह जाती है। नन्हें नन्हें उडगणों से शून्य होकर दीपमालिका का प्रकाश हृदय को जितना प्रफुल्लित कर सकता है, आकाश में अतुलनीय ज्योतिशालिनी क्षणिक-विद्युत में वह शक्ति कहाँ ? क्या कहते हो ?......(आकाश की ओर देखकर) आर्य्य समुद्रगुप्त......तुम प्रसन्न हो ? ......तुम्हारे नेत्र हर्षोन्मत्त हो उठे हैं। तुम्हारा आदित्य तुम्हारे आशीर्वाद का. कृपा का पात्र हो गया ? क्या सत्य ? आर्य्य, मैं तो तुम्हारे ही मूक आदेश पर चलता रहा देव ! तुम्हारे इंगितमात्र से ही आज भी मेरा जीवन पूर्ण हो उठेगा आर्य्य !

(पट-परिवर्तन)

—— ——

छठा दृश्य

[राजदरबार का स्वर्गीय दृश्य, आदित्य और कोणदेवी सिंहासनासीन]

विष्णुशर्मा—सम्राट, बालसखा स्वर्गीय महासेनगुप्त के शौर्य्य वैभव और वीरता के बीच एक ऐसे ही तेजस्वी बालक की कल्पना की थी। सोचा था, कि गुप्त-लक्ष्मी सहज ही किसी को वरण न कर सकेगी। सत्य ही गुप्त-राजलक्ष्मी ने अपने उपयुक्त

ही वर की सृष्टि कर ली। कुमार राजदंड धारण कर नारी, ब्राह्मण और बालक की रक्षा करने की सामर्थ्य तुम में हो, यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है। सेनानायक सालयत्त, वीर शिरोमणि गुणधवलदेव, गुप्ताकाश तारक हरिकिरणदेव आज की भाँति ही सर्वदा अपने पवित्र हृदय और उज्ज्वल शरीर से युवक सम्राट के प्रति उनके कल्याण के हेतु आवश्यकता होने पर कठोर भी बन सको तुम्हारे लिये इससे अधिक श्रेयस्कर और कोई आशीर्वाद नहीं है।

आदित्य—आदेश धारण करता हूँ, गुरुदेव! युग युग तक इन्हीं चरणों में रह कर प्रजापालन की शिक्षा ग्रहण कर सकूँ ऐसा ही आशीर्वाद दीजिये।

सालयत्त आदि—आपका आशीर्वाद फलीभूत हो! भगवान ऐसा ही करें!

श्रीमतीदेवी—माँ के आशीर्वाद से यदि सन्तान का हित होता हो तो मैं तो यही कहूँगी कि सूर्य्य-चन्द्र-नक्षत्र-सज्जित नीलाकाश मंडल के समान युग युग तक पुत्री कोण का सौभाग्य स्थिर और शुभ्र बना रहे।

देवप्रिया—कुमार आदित्य, आज गुप्तगौरव का सर्वोच्च शिखर जाज्वल्यमान है। देश अन्न धन से सर्वथा अपूर्ण नहीं। राजा के हृदय में स्वदेश-प्रेम निजकुल-गौरव और आर्य्य वैदिक-सभ्यता का उत्कट प्रेम है। साध्वी, गुणवती, विचार-शीला, परोपकार-रता तथा अतुलित शौर्य्यवती कोण के हाथों में आदित्य को सौंप कर कुछ आशीर्वाद दे सकूँ ऐसी तो मेरी सामर्थ्य नहीं है। आज मैं पूर्ण रूप से निश्चिन्त हूँ। (स्वगत) सुप्त नारी, जाग, उठ, तेरा उद्देश पूरा हुआ। लुप्त गुप्त-कुल-लक्ष्मी लौट आई। साध्वी पट्ट-महादेवी के पुण्य प्रताप से राज-लक्ष्मी कदापि विचलित न हो सकेगी। यही चिर सत्य होगा।

(प्रकट) अच्छा, अब मैं शीघ्र ही दाक्षिणात्य को प्रस्थान करूँगी।

कोण—देवी, पति-पुत्र के बीच आनन्द की धारा में इस अपनी कोण को न भुला देना।

(नेपथ्य में) परमभट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वीपति आदित्यसेनगुप्त की जय हो।

प्रतिहार—सम्राट एक महावृद्ध दर्शनाभिलाषी हैं।

आदित्य—आदरपूर्वक ले आओ।

(अत्यन्त दीन-हीन वेश में असहाय-सा होकर एक महावृद्ध दो पुरुषों के कन्धों पर आश्रय लेकर प्रवेश करता है।)

वृद्ध—कुमार! कुमार! कहाँ हो? वृद्ध-नेत्र एक बार खुल कर कुमार का विष्णुरूप तो देख लें। लक्ष्मी! लक्ष्मी माँ! भगवान का अन्तर्हित रूप तो दिखाओ। तुम्हारे अतिरिक्त कमला यह शक्ति त्रिभुवन भर में अन्य किसी में भी नहीं है।

आदित्य—हा! दादा! दादा! तुम्हारी क्या दशा हो गई?

(सिंहासन से उतर कर गले से लिपट जाता है)

वृद्ध—चिरजीवी हो कुमार! अब नारायण रूप में लक्ष्मी-सहित चतुर्भुजरूप से दर्शन दो। दादा, दादा कह कर दीन को आदर देने वाले कुमार का दर्शन तो अनेकानेक वर्षों से कर रहा हूँ।

आदित्य—यह आप क्या कहते हैं दादा? आपका बालक आप की गोद में ही चिर-काल तक रहे, यही उसे शोभा देता है।

वृद्ध—नहीं, नहीं, कुमार, चतुर्भुज रूप दिखाओ तो सही।

(आदित्य सिंहासन पर बैठते हैं। सालयक्ष आदि छत्र, चंवर आदि धारण करते हैं। महादेवी, श्रीकोणदेवी सिंहासन पर वाम-भाग में बैठती है।)

आह! धन्य हो गया, कुमार! बहुत बार हठ से यशोगान सुना है। आज आर्य चन्द्रगुप्त, आर्य समुद्रगुप्त······वह देखो,

आर्य स्कन्दगुप्त उज्ज्वल सूर्यासन पर बैठे मुस्करा रहे हैं। यही तो उनका शुभाशीर्वाद है। इस समय एक बार फिर इस वृद्ध के कम्पित कंठ का गान सुनो।

किरणों सम उज्ज्वल ज्योतिमान।
आदित्य धर्मधारी महान।
कर शत्रु दलन शोभायमान॥
अधिकारी देव आसीस, जान।
धार्मिक न्यायी सौभाग्यवान॥ किरणों…

जननी उपकारी दानशील।
शिक्षा हेतु भक्ति सुज्ञान॥
निर्मित करती सुन्दर प्रासाद।
उसका सुत वैष्णव ज्ञानवान॥ किरणों…

श्री महादेवी शुभ कोणदेवी।
उपकार रता सुहृदय सुजान॥
आदित्यप्रिया शतकीर्तिवान।
जन हित अर्पित तन मान प्रान॥ किरणों

धार्मिक उदार और शक्तिवान।
नवयुवक तदपि यश अमर जान॥
निर्मित मन्दिर क्षितिभुजा विष्णु।
रठता निशिदिन धन धन्य गान॥

किरणों सम उज्ज्वल ज्योतिवान।
आदित्य भानुसम वीर्यवान॥

(पटाक्षेप)

———

कथा-वस्तु

प्राचीनकाल में भारत देश में मगध और उसके आस-पास के स्थानों पर महासेनगुप्त का पौत्र माधवगुप्त का पुत्र आदित्यसेनगुप्त राज्य किया करता था। उस समय भी गुप्त राजाओं की राजधानी पाटलीपुत्र थी। आरम्भ से ही माधवगुप्त की हर्षवर्धन के प्रति प्रीति थी। माधवगुप्त की पुत्री (कल्पित चरित्र) देवप्रिया दाक्षिणात्य सम्राट से ब्याही जाती है। सुख और आनन्द की भरपूर छाया में बालिका पितृकुल की ओर विशेष ध्यान नहीं देती। इसी बीच में एक रात दाक्षिणात्य सम्राट कहीं बाहर गये हुए होते हैं। रात्रि के समय विरहाग्नि-तप्ता देवप्रिया चाँदनी रात में खड़ी हुई है। ऐसे ही समय गुप्त-राज्य का प्राचीन स्तम्भ एक राजभक्त सच्चा शूर-वीर महानायक आ खड़ा होता है। उसकी करुण कहानी कर्ण-कुहरों को बेधती हुई कोमल-हृदया नारी के अन्तस्तल तक पहुँच कर उसे मथ डालती है। देवप्रिया पितृकुल के लुप्त गौरव की चर्चा से अत्यन्त दुःखी हो; अनिश्चित काल के लिए अपने नन्हें पुत्र सहित श्वसुर-गृह को त्याग कर पितृ-गृह चली आती है। देवप्रिया का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल और कठोर प्रतीत होता है, किन्तु हृदय की सबसे नीची तह में हर समय उसका नारी हृदय व्याकुल होकर रोता रहता है। पितृ-गृह में आकर उसकी एकमात्र आशा नन्हा सा भाई आदित्य ही रह जाता है। देवप्रिया अत्यन्त सावधानी और यत्न से आदित्य के हृदय में पूर्वजों के लुप्त गौरव के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा उसके पुनरुद्धार की प्रबल इच्छा का अंकुर बोती है। आदित्य, माधव-गुप्त का पुत्र, स्वभाव से ही तेजस्वी और वीर है। वह पूर्वजों की

यश-गाथाएँ सुन-सुन कर निरन्तर हृदय की पूर्व वंश-गौरव प्राप्त करने की एकान्त आकांक्षा को जागृत करता रहता है।

. इसी बीच उसके जीवन में एक और व्यक्ति प्रवेश करता है। कोणदेवी राजा के एक महानायक की पुत्री है। माधवगुप्त के शासनकाल की अव्यवस्था का शिकार उसके पिता को बनना पड़ता है। दरिद्रता रूपी अभिशाप को प्राप्त कर उसे दुर्गस्वामिनी की वीणा वेचनी पड़ती है। यह घटना उसके हृदय को टूक-टूक कर देती है और महानायक अन्त गति को प्राप्त होता है। कोणदेवी जेष्ठ भ्राता के साथ राजधानी की ओर पग बढ़ाती है। किन्तु हा दुर्भाग्य! मार्ग में ही कुछ दुष्ट-प्रवृत्तिवान सैनिकगण भाई को मार कर बालिका कोणदेवी को नगर-गणिका मधुमयी के हाथ बेच देते हैं। जहाँ से वह बौद्ध-धर्मावलम्बिनी मधुमयी द्वारा बौद्धभिक्षु बुद्धगुप्त को दे दी जाती है। आगे की कथा साधारण सी है। कोणदेवी बौद्धश्रमण द्वारा भली प्रकार शिक्षित की जाकर युवराज आदित्य की गुप्त हत्या के लिए युवराज की सेवा में पुरुष वेश में भेज दी जाती है। प्राचीन गुप्तवंश के प्रति कोण-देवी के हृदय की सारी श्रद्धा कुमार आदित्य के चरणों पर प्रेम बनकर अर्पित हो जाती है। कहाँ हत्या और कहाँ प्रणय! कोण-देवी कुमार आदित्य को प्रेम करने लगती है। युद्ध-क्षेत्र में कुमार के समीप ही साहसपूर्वक युद्ध करती हुई कोणदेवी एकदम कुमार के भूमिस्थ होने से विचलित होकर कुमार को युद्धक्षेत्र से लेकर भाग जाती है, किसी अज्ञात-नाम-धन्य ग्राम की ओर। कुमार की स्मरण-शक्ति लुप्त हो जाती है। इस नवीन व्यक्ति को लेकर कोण समय व्यतीत करती है। किन्तु उसका हृदय निशि-वासर हाहाकार करता रहता है, स्वार्थोद्देश से कुमार को रण-क्षेत्र से ले जाने पर। एक दिन कोणदेवी किसी सुदूर-स्थित ग्राम में जाकर अनेकानेक शारीरिक कष्ट सहने के पश्चात् किसी वैद्य की सहा-यता से कुमार की स्मरण-शक्ति लौटा लेती है। किन्तु आशा के

स्थान में निराशा ! कुमार उसे ही विश्वासघाती समझ कर ठुकरा देते हैं। हायरी ! अभागी नारी !

कुमार राज्य-वैभव में लौट आते हैं। माँ की शीतल गोद और पिता द्वारा मस्तक-चुम्बन दोनों ही उसके तप्त-हृदय को शीतल बनाने में असमर्थ रहते हैं। वह जीवन में एक रिक्तता सी अनुभव करता है। कदाचित कोणदेवी के लिए।

फिर युद्ध की योजना की जाती है। सोचा जाता है, कि गुप्त-रूप से वर्धन साम्राज्य पर आक्रमण कर असावधान शत्रुओं को नष्ट कर दिया जाय। अत्यन्त सावधानी से कार्यारम्भ करने पर भी दुर्भाग्यवश बौद्धाचार्य मद्यशाला की एक दासी द्वारा गुप्तरूप से एक साधारण सैनिक से धोखे से प्राप्त किया हुआ युद्ध-समाचार संग्रह कर लेते हैं। वर्धन सम्राट को समाचार समय पर मिल जाता है और उस ओर भी पूरी तैयारी हो जाती है।

कोणदेवी विरह-व्याकुला, जीवन से भी घृणा करने लगती है। उदाराशया देवी मधुमयी. कोणदेवी को कर्तव्य का यथार्थ उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाकर कर्तव्य करने के लिए उत्साहित करती है। कोण भी युद्ध में स्वामी से अज्ञात रह कर उनकी पूर्णरूपेण सहायता करती रहती है। युद्ध समाप्त हो जाता है। विजयदेवी कुमार को ही वरण करती है। किन्तु माधवगुप्त की मृत्यु हो जाती है। देवी मधुमयी के आदेश से कोणदेवी को अपनी बाल-सेना सहित जो कि उन्होंने स्वयं तैयार की थी, राजधानी की ओर आ जाना पड़ता है, जहाँ कि वह अनेक प्रकार से सम्राट की सहायता करती है।

उधर सिंहासन के लिए प्रश्न उठता है कि किसी को आसीन करके प्रजा को सन्तुष्ट किया जाये। राजमाता दुःख-कातरा इस संकट में बिलकुल नहीं पड़तीं। देवप्रिया उपयुक्त भी है और

योग्य भी, किन्तु वह अत्यन्त साहस-पूर्वक राज्य ग्रहण करना अस्वीकार करके भी राज्य-रक्षा का भार अपने सुकोमल कन्धों पर लेती है।

इसी बीच देवप्रिया कोणदेवी के समस्त गुणों को जान कर आदित्य को उसके हाथों में देने के लिए लालायित हो उठती है। साथ ही इसे यह भी ज्ञात हो जाता है कि यह दोनों परस्पर प्रेम करते हैं, किन्तु वह प्रेम जो कर्तव्य को पीछे ढकेल नहीं देता।

कुमार युद्धस्थल से लौट आते हैं। कोणदेवी का शुभ-विवाह कुमार आदित्य के साथ हो जाता है। सिंहासनासीन भाई तथा उच्चाशया भाभी के हाथों में पितृकुल का गौरव छोड़कर सुखी देवप्रिया अपने दूर-देश-स्थित स्वामी तथा नन्हें पुत्र के पास लौट जाती है। महादेवी राजमाता आनन्द से खिली हुई पुत्र और वधू को आशीर्वाद देती हैं। पुराना चारण रामभट्ट जो कि केवल मात्र लुप्त स्वामी-कुल वैभव का पुनरुद्धार देखने के लिए ही प्राण अटकाये था, आकर गुप्त-कुल का अन्तिम यशोगान करके, प्राण त्याग देता है।

—:o:—

चरित्र-चित्रण

कोणदेवी

समस्त कथानक में एक नारी चरित्र है, और एक पुरुष चरित्र। नारी-चरित्र की सर्वाङ्गपूर्ण प्रतिमा दिखाने के लिये ही कोण, मधुमयी और देवप्रिया की सृष्टि होती है। कोण भोली-भाली बालिका है। युद्ध-कला में निपुण सैनिक भी है और विरह-कातरा प्रेमिका भी। यही नारी चरित्र है। रणचंडी दुर्गा समस्त विश्व का भले ही संहार कर सके, किन्तु स्वयं अपने सम्मुख, अपनी वात्सल्यपूर्ण पुत्र के प्रति भावना के सम्मुख उसे नम्र होना ही पड़ेगा। नारी की इसी दुर्बलता में शोभा है, अन्यथा वह प्रस्तर खंड मात्र न हो जाती। कोणदेवी स्वयं अपनी भावनाओं को पढ़ नहीं पाती, किन्तु फिर भी वह पति-पद-चिह्नों पर चलकर कर्तव्याकर्तव्य के भीषण संघर्ष से जिसने Hamlet जैसे वीर को भी अकर्मण्य कर दिया था, अपने को बचा लेती है। यही उसका सर्वोच्च त्याग है, सृष्टि का सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर "आत्म-समर्पण" है। अधिक कुछ न कहती हुई मैं इस विषय को पाठकों की भावना पर ही छोड़ती हूँ।

देवप्रिया

देवप्रिया एक दृढ़-चरित्र वाली युवती है। आदित्य के शब्दों में उसकी व्याख्या इस प्रकार हो सकती है। "भगवान ने भूल से उसके नारी हृदय के स्थान में धधकती हुई अग्नि शिखाएँ भर दी हैं जिन पर लिखा हुआ है केवल 'देश'।" देश-प्रेम की अग्नि उसके समस्त अस्तित्व को भस्म किये दे रही है। पति, पुत्र से भी पहले वह देश की ओर दौड़ती है, किन्तु क्या इसी से उसका रमणी-हृदय शान्त हो गया? कदापि नहीं। कभी, कभी उसका स्त्री-हृदय तड़प-तड़प कर रो उठता है। फिर भी समग्र सृष्टि भर में कोई उसे देश-प्रेम से पृथक कर सके ऐसी शक्ति जान नहीं पड़ती।

मधुमयी — देवी मधुमयी, विलासिनी नारी राजधानी की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी गणिका है। किन्तु गणिका के भीतर भी नारी हृदय, साधारण नारी के हृदय की भाँति ही रो उठता है। वह भी अतृप्त वात्सल्य की तृषा को कहीं बुझाने के लिये स्थान ढूँढती है। मधुमयी ने धर्म की शरण ली, किन्तु उसका पद व्यक्ति धर्म से कहीं ऊँचा है। अतः उसने धर्म-प्रेम को मानव जाति, समस्त विश्व के प्रेम पर बलिदान कर दिया। उसका जीवन केवल आँख-मिचौनी की तरह परीक्षा में बैठने और अनुत्तीर्ण होकर नवीन खोज करने का जीवन है? फिर भी वह खोजती ही जाती है और अन्त में समस्त देश के, और कदाचित समस्त विश्व के प्राणीमात्र के प्रेम में ही उसे शान्ति मिलती है।

श्रीमतीदेवी — श्रीमतीदेवी माँ है किन्तु अधूरी। माँ की वास्तविकता अखिल ब्रह्मण्ड के पुत्रों को अपने वात्सल्यपूर्ण हृदय में लोटने देने में ही है। देवप्रिया सच्ची माँ है, किन्तु राजमाता अपूर्ण माँ। मातृत्वपूर्ण हृदय की सार्थकता को वह पा ही नहीं सकी।

आदित्य-सेनगुप्त — आदित्यसेनगुप्त नाटक का नायक है। वह शूरवीर और साहसी योद्धा है। शत्रु सैन्य पराजित करना जानता है किन्तु देवप्रिया और कोण के बिना कदाचित उसका कार्य अधूरा ही रह जाता। देवप्रिया उसे ज्वाला देती है तो कोण शीतलवारि। इसी प्रकार दो उच्च हृदय रमणियों के बीच उसका जीवन अत्यन्त उज्ज्वल हो उठता है।

सम्भवतः यथार्थ नारी के बिना पुरुष जीवन अपूर्ण अपंग ही हो रहता है। एक ही उद्देश्य, जीवन की पूर्णता, नारी को नारी और पुरुष को पुरुष बनाता है।

कंचनलता सब्बरवाल
